—विषय-सूची—

नं०	विषय	पृष्ठ
१	—मनुष्य बनो कार्यालय से प्रकाशित पुस्तकें	१
२	—शिव० साहित्य प्रका० मंडल की पुस्तकें व निवेदन	२
३	—प्रार्थना	३
४	—लेखक महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज	४
५	—कर्म सुधार	७
६	—सतसङ्ग के बचन कर्मवाद	११
७	—अजर अमरपन	१५
८	—मृत्यु	२०
९	—पिण्डदेश और हड़ताल की कथा	२४
१०	-उपयोगी बातें	२८
११	-परम० फ़क़ीर सा० का पत्र भाई कुबेरनाथ जी के नाम	२८
१२	-शान्ति की प्राप्ति	३२
१३	-निज अवस्था	४०
१४	-दीवानगी समझदारों केलिये यथार्थ अन्योंके लिये आश्चर्य	४१
१५	-शुभ संदेश	४८
१६	-परमदयाल फ़क़ीर साहब ने सत्तधाम की स्थापना की	४९

मनुष्य बनो कार्यालय से प्रकाशित अमूल्य पुस्तकों के नाम समूल्य पाठकों के लाभार्थ दिये जाते हैं जिनके अध्ययन से सुखमय जीवन व्यतीत करने का रहस्य सहज ही प्राप्त हो सकता है।

नाम महात्म	१)	शिव संहिता	१॥)
मानवधर्मप्रकाश उर्दू हिंदी	१॥)	सचाई	।)
फ़क़ीर शब्दावली	,, ।=)	सुमेरु पर्वत हिंदी	१॥)
सतविद्याप्रकाश	,, ।=)	ट्रुथ एन्ड रीयलिटी अँ०	।=)
इब्राहीम अधम	,, ॥=)	परमार्थ सुधार	॥)
उन्नति मार्ग	।)	निष्कलंक अवतार ,,	॥)
आवागमन ,,	॥।)	विश्व हितैषी उर्दू	१॥)

...व्रतलाल जी महा० कृत शिवसाहित्य
—प्रकाशन मंडल की अमूल्य पुस्तकें—

पुस्तक	मूल्य
कानून ख्याल	१)
कथा कल्पद्रुम	१)
कथनान्जलि	।।।)
गिरहदार मोती	१)
द्रष्टान्त सन्देश	।।।)
राजस्थान की ललित लल०	।।।)
परमार्थ सुधार	।।।)
आदर्श भारतीय वीरांग्नायें	।।)
ललित उपदेशान्जलि	।।)
शिव संहिता	१।।)
विष्णु संहिता	१।।)
महारामायण	५)
शब्द गुन्जार भाग १	।।।)
रूहानी प्राइमर	।।)
सहज विचार	१)
दयाल संहिता	।।।)
पंथ सन्देश	१—)
कबीर जोग भाग १	१—)
" " भाग २	१।)
गुटका शब्द संग्रह	।)
राजभक्तिनी मीराबाई	।।।)
राज भक्त गोपीचंद, सुदामा	१)
आदर्श भारतीय महिलायें	।।।)
शब्द सार	।।।)
शाही पति परायण	१।।)
कर्म सुधार	।।।)
हितोपदेश	।।)

* निवेदन *

इने गिने कुछ ग्राहक महोदयों का वार्षिक मूल्य अभी तक आया है शेष सज्जनों ने भेजने की कृपा अभी तक नहीं की अतः प्रार्थना है कि गतवर्षों की भाँति अपना वार्षिक मूल्य शीघ्र ही भेजकर कृतार्थ करेंगे और कुछ नवीन ग्राहक बनाकर इस कार्यालय की सहायता में अपना हाथ बटायेंगे। सर्व श्री आनन्द-राउ जी और राजेश्वरराउ जी वैमनपल्ली का विशेष रूप से इस ओर ध्यान दिलाया जाता है।

—मैनेजर

R.S.

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदंपूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ४ | ज्येष्ठ सं० २०१३ जून १९५६ | सं० ६

❀ प्रार्थना ❀

गुरुदाता दया की दृष्टि करो, जग में नहिं कोई हमारा है ।
सम्बन्धी स्वारथ के सब हैं, केवल तेरा ही एक सहारा है ॥
तन विकल तो मन अति चंचल है, नस नाड़ियों तक में हलचल है ।
शान्ती का कोसों पता नहीं, यों काल करम ने मारा है ॥
नहीं योग युक्ति का कोई जतन, नहीं ज्ञान ध्यान का है साधन ।
दुबिधा दुचिताई ने घेर लिया, इस घेर का वार न पारा है ॥
आपत और विपत का सामना है, क्यों कर इस मन को थामना है ।
इस बात का पूरा निश्चय हुआ, दुखदाई महा संसारा है ॥
क्या करूँ कहाँ आऊँ जाऊँ, किस विधि शान्ती की दशा पाऊँ ।
मेरे गले पड़ी दुख की फांसी, यह काल बड़ा हत्यारा है ॥
सतसङ्ग के नहिं सुने वचन, सुन कर भी नहीं होता है मनन ।
निष्फल जाता है मेरा जनम, मन हारा हारा हारा है ॥
आये हैं शरन में अब तेरे, माया और काल नहीं घेरे ।
राधास्वामी संत रूप तेरा, दे नाम, नाम हमें प्यारा है ॥

लेखक महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज

मेरे एक सतसंगी भाई पंडित फ़क़ीर चंद जी हैं जो फ़क़ीर कहलाते हैं। रंग और रूप दोनों की दृष्टि से वह फ़क़ीर हैं सुनाम (पटियाला) में रहते हैं। राधास्वामी धाम में आये। सुनाम में चलने का निमंत्रण दिया। मैं वहां गया। लाला देवी-दयाल साहब ऐडवोकेट के यहां महमान हुआ। स्वर्गीय बाबा चूहड़ दास सहाब की समाधि पर प्रतिदिन सतसंग होता रहा। हिन्दू मुसलमान सभी सम्मिलित होते रहे। पीरे मुग़ां सहाब की ग़ज़लें पढ़ीं जाती थीं। शाह कलंदर भी कभी कभी कुछ सुना दिया करते थे। बड़ा आनन्द रहा।

अधिक दिवस तक कहीं ठहरना न उचित है और न पसन्द है। न स्वीकार है और न सम्भव है। मैं एक दिन उठा और बोरिया बिस्तर समेट कर सबसे बिदा होने लगा:—

दुर्वेश रवां रहे तो बहतर, आबे दरिया बहे तो बहतर।

फ़क़ीर ने प्रार्थना की कि कोई ऐसी छोटी सी पुस्तक लिख दीजिये जिससे जनसाधारण सुगमता से समझ सकें। (वह पुस्तक अब शिव साहित्य प्रकाशन मण्डल के जून के माहमें प्रकाशित कर रहे हैं। जिनको आवश्यकता हो मनुष्य बनो कार्यालय से मँगा सकते हैं) अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए मैं राधास्वामी धाम में आया यहां अवकाश ही अवकाश है लेखनी हाथ में ली और सफ़ेद काग़ज़ के पृष्ठ पर पृष्ठ स्याही के रंग से रँग दिये। बुरी है अथवा भली उसका निर्णय स्वयं पाठक गण करें। यह जैसी है वैसी है परन्तु यह आशा है कि जो व्यक्ति ध्यान पूर्वक अध्ययन करेंगे उनको कुछ न कुछ आनन्द अवश्य मिलेगा। और यदि किसी अध्ययन करने वाले को अध्यात्म प्राप्त करने की इच्छा हुई तो फिर तो क्या कहना है एक हाथ चांदी

दूसरा सोने का "एक पंथ दो काज" का मामला हो गया। परन्तु मेरी अन्तिम शिक्षा यह है—

राहे खुदा में आजा, तू अपने सर के बल चल।
है नाक का वह रस्ता, सीधा न कुछ है हलचल ॥
पोथी में पत्रों में राज़े खुदा नहीं है।
यह खन्दकें हैं गहरी, तू सोच सँभल कर चल ॥
जब तक मिले न मुर्शिद, इस राह में न आना।
धोखे में तू पड़ेगा, हरगिज़ न तू मचल चल ॥

(तुम क्या हो ?)

१—तुम क्या हो ? यह प्रश्न तुम अपने मन से स्वयं करो और बहुधा करते रहो सम्भव है कि उसका उत्तर कभी तुमको वास्तविकता के मार्ग में डालदे।

२—हम यह नहीं पूछते कि तुम किस वंश से हो, तुम किस जाति अथवा किस धर्म या सम्प्रदाय के हो ? इनसे हमको संबंध नहीं है और यथार्थ में यह तुच्छ प्रश्न है। उसके अतिरिक्त तुम यदि यह उत्तर दो कि हम मनुष्य हैं, तो हमको सुनकर प्रसन्नता होगी। हम केवल यह उत्तर चाहते हैं।

३—यदि मनुष्य हो तो मनुष्यता का मार्ग ग्रहण करो मनुष्य हो तो मनुष्य बनो मनुष्य हो कर रहो। आदमी में आदमियत चाहिये, आदमियत आदमी की शान है।

४—इन्स और उन्स दोनों शब्द एक ही तत्व से निकले हैं इन्स अरबी भाषा में इन्सान को कहते हैं और उन्स मजलिस पसन्दी को कहते हैं, जिसमें मजलिस पसन्दी की आदत हो वह इन्सान है और मजलिस पसन्दी की आदत का सम्बन्ध शिष्टाचार से है, इससे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य को कृपालु और दयालु होना चाहिये।

५—जिसमें उन्स या उन्सीयत न हो उनको सम्भवतः आप मनुष्य कहना उचित न समझोगे।

६–मनुष्य हो तो प्रत्येक बात में मनुष्य बनो और प्रत्येक बात में मनुष्य बनकर रहो। मनुष्य रूप में आंख, कान और नाक रखने वाले को मनुष्य नहीं कहते, यह अंग तो पत्थर, लकड़ी मिट्टी, कांसा और पीतल की मूर्ति में भी होते हैं क्या तुम उनको इन्सान कहोगे ?

जब हुए इन्सान, तो हो कुछ उन्सीयत।
खुल्क़ हो उल्फ़त हो, और इन्सानियत॥
उनसे ख़ाली हो तो फिर इन्सां नहीं।
कैसा इन्सां ? सच है हैवां भी नहीं॥

७–मनुष्य प्रकृति में सबसे श्रेष्ठ और उच्चतर बनाया गया है सम्भवत: यह तुमको विदित भी है और मनुष्यता और श्रेष्ठता की उच्चकोटि का भाग अधिकतर शिष्टाचार में रहता है।

मनुष्यता के शिष्टाचार की श्रेष्ठता की मूर्ति सहनशीलता है। शारीरिक, मानसिक और इन्द्री दमन सहनशीलता के अनेक रूप हैं जिसमें सहनशीलता का गुण होता है वह बलवान होता है और वह शरीर, मन, और मस्तिष्क को अपने अधिकार में रखता है और जिसमें यह गुण देखो समझ लो वह मनुष्य है वरन् मनुष्य के रूप में पशु है।

ज़ब्त का आईन ज़ाबिद से हमेशा पूछना।
ज़ब्ते दिल का सच्चा जज़्बा हो तुम्हारी आंख में॥

शब्द

दयाल फ़क़ीर आये जग में, सत का अवतार धार।
शब्द मत सिखला के जीवों का किया सच्चा सुधार॥
दुर्मति को त्याग दो, द्वेष ईर्षा अच्छी नहीं।
मन में हो परतीत प्रीति और प्रेम भक्ति से प्यार॥
साम दाम और भेद से और दंड से निकला न काम।
प्रेम के मारग में आओ प्रेम का करके विचार॥

प्रेम में शक्ति है रहती और निबलता द्वेष में।
प्रेम का बल लेके अब हो जाओ भवसागर से पार॥
राधास्वामी योग सीखो राधास्वामी योग पढ़।
योग का संयोग हो इसका करो निशदिन प्रचार।

जा खोजत ब्रह्मा थके सुर नर मुनि देवा।
कहत कबीर सुन साधवा कर सतगुरु सेवा॥
यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान।
शीश दिये जो गुरु मिलें तो भी सस्ता जान॥

—:o:—

कर्म सुधार

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

आज दाता दयाल महर्षि जी लिखित 'कर्म सुधार' नामक पुस्तक पढ़ी जो शिव प्रकाशन मण्डल दयालनगर ने 'शिव' मासिक पत्र के अप्रेल सन् १९५६ के अङ्क में प्रकाशित की है। पढ़ने के पश्चात् काफ़ी समय तक मैं अपने अस्तित्व एवं मानसिक अवस्था को भूला रहा। होश आया। सोचता हूं:—

है कोई तदबीर जगत में जिससे जन संस्था इन्सान बने।
अपने मन पर क़ाबू पाये जीयें और औरों को जीने दे।
ऋषी मुनी पीर पैग़म्बर आये अपनी २ सब कह २ गये।
दुनियाँ जैसी है वैसी ही है, क्या जग के नर हैं सुधरे॥

यह विचार क्यों आया? वाह्य प्रभावों के कारण। मैं गृहस्थी हूँ। मेरा सम्बन्ध दुखी अशान्त और संतप्तों से रहता है। इसके अतिरिक्त पंजाब में आज कल हुल्लड़बाज़ी रहती है और मज़े की बात यह है कि प्रत्येक प्रकार का मनुष्य चाहे वह व्यक्तिगत रूप से अथवा घरेलू रूप से या देशीय रूप से दुखी, अशान्त आदि है, वह किसी न किसी महात्मा, गुरू, ईश्वर, परमेश्वर

आदि के विचार से सम्बद्ध है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य का किसी धर्म, पंथ और सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखना ही पर्याप्त नहीं है। केवल अपने को हिन्दू मुसलमान, वेदमार्गी, पंथाई सिख अथवा ईसाई आदि मान लेने से जीवन नहीं बन सकता है। तात्पर्य यह है कि मानव जीवन सुखी नहीं रह सकता।

क्या प्रत्येक प्रकार के विचारवान् मनुष्य में किसी न किसी रूप में पूर्व पुरुषों के संस्कार नहीं है? यदि हैं तो हम लोगों को मनुष्य बनकर जीवित रहने की शक्ति होनी चाहिए। यदि नहीं है तो स्पष्ट है कि हममें वह संस्कार नहीं हैं अथवा वह संस्कार ग़लत हैं। मैं स्पष्ट देखता हूँ कि ईश्वर अथवा गुरुभक्त अधिक अशान्त हैं। जिस भांति संसार में हठधर्मी, पक्षपात, युद्ध और झगड़े हुये, इनके अनुयायी ईश्वर अथवा किसी न किसी महात्मा के अनुयाई थे। इस समय पंजाब महासभा, जन संघ और अकाली आदि पार्टियों ने जो ऊधम मचाया हुआ है वह शांतिप्रिय मानव के लिए दुख का कारण हो रहा है। सम्भव है मुझको कोई कांग्रेस का पक्षपती समझे। ऐसा कदापि नहीं। मैंने समस्त जीवन धार्मिक और वास्तविकता की खोज में व्यतीत किया है और यह जानने का यत्न किया है कि कौन सा उपाय ठीक है जिस पर चलकर हम अपने आपे की खोज कर सकते हैं और जीवन को सुख शांति मय बना सकते हैं अथवा हम अपना जीवन प्रसन्नतापूर्वक साधन सम्पन्न और निश्चिन्त तथा निर्भय बना सकते हैं।

अपनी अपनी सम्मति सब देते हैं और बड़े बड़े नेता बुद्धिमान, चतुर पुरुष जानते हुए कि हम जो कर रहे हैं उसका परिणाम बुरा होगा। फिर भी वह अपने स्वभाव अथवा स्वार्थ वश विवश हो रहे हैं।

इस विचार में निमग्न था। कोई ऐसा ठोस उपाय मस्तिष्क

में नहीं आ रहा था कि एक अपरचित व्यक्ति ने आकर मेरी सुरत को अपनी ओर आकर्षित किया। मैं उनके नाम, घर आदि से अपरचित हूँ। यद्यपि दो वर्ष के समय में वह मुझे एक अथवा दो बार मिले थे। रूपरंग पवित्र। मैंने उनको देखा "कहो भगवन् कैसे आये ?" वह हँसे और कहा "मैं आपको भयंकर प्रलयकारी रूप में देखना चाहता हूं।" मैं चकित हो गया। समझा कि या तो यह दीवाना है अथवा यह इसका विश्वास है कि यह मुझे कुछ समझता है। चूँकि मैं संकल्प शक्ति के रहस्य को समझता हूँ इस लिए मेरी गुत्थी सुलझ गई। वह कैसे! मैंने समझ लिया कि संसार को ठीक मार्ग दिखाने के लिए प्रकृति आपत्ति और दुख लाती है। चाहे वह व्यक्तिगत रूप से हो। कौटम्बिक हो अथवा देश सम्बन्धी हो।

इसका उपाय यह है कि सुख, शान्ति और सौख्य के इच्छुक प्राणी सुख और चैन के जीवन के इच्छुक अपनी इच्छा को तीव्र करें। उनके विचार की शक्ति स्वयम् ऐसी सामग्री उत्पन्न करेगी जिससे वह पदार्थ सुख, शक्ति का विरोधी है अथवा जो अपने मनोवेगों और निजस्वार्थ के लिये दूसरों का अहित चाहने वाला है, स्वयम् नष्ट हो जावेगा। किन्तु इस पदार्थ को नष्ट अथवा उन्मूलन करने का कार्य जो दया अथवा कड़ाई से किया जाता है, सन्त या फ़क़ीर नहीं कहते हैं। क्योंकि वह सहज बात को अपनाते हैं।

सन्तों का मार्ग दया रहम का है, वह क़हरवान नहीं होते।
प्रेमभक्ति है उनका वतीरा, प्रेम से सबको हैं समझाते॥
जहाँ कोई प्रेम से न माने कहना, वहाँ वह चुप हैं हो जाते।
ऐसी हालत में मादरे कुदरत, से काल चक्र हैं आते॥
परिवर्तन करके वह चक्र, संसार में नया दौर हैं लाते।
संत या फ़क़रा कभी भी तलवार को हाथ से नहीं उठाते॥

इसलिए प्रेम मार्ग में आकर मैंने पुकार की है कि 'मनुष्य बनो'।

जो नहिं माने इस वचन को काल कर्म वश रहेगा।
जो नर इन्सान बनने से मुनकिर होगा वह न रह सकेगा।
यह वाणी है फ़क़ीर की जिसने अपना जीवन खोया।
खोकर आप जो समझ में आया, साफ़ साफ़ कह गाया॥

फिर भी स्वभाव से विवश होकर सच्चे हृदय से उस परमतत्व परमाधार दातादयाल अकाल अनाम से पुकार करता हूँ कि हम अज्ञानी, मूर्ख और नादान हैं। हमको सच्ची बुद्धि दे। यद्यपि प्रकृति का नियम अटल है। हम सबको किसी न किसी रूप में अपने कर्म का फल जैसा किया है भुगतना पड़ेगा। जब तक पूर्ण ज्ञान नहीं होता जहां न कर्म है, न धर्म है, न विचार है, न भक्ति है वह क्या है ?

एक अवस्था निर्मल सुन्दर जहाँ मन नहीं और तन नहीं।
वहाँ राम नहीं, खुदा नहीं, स्वामी नहीं और जन नहीं॥
वह ज़ात है अपार आपा, वह अमन नहीं और बे अमन नहीं।
वह ज़ात सबकी है, प्यारो ! जिसने जाना वह बे अमन नहीं॥
वह मेरा या तुम्हारा असली घर है, जहां दुख न सुख और अनबन नहीं।

इस संसार में हम आये। उसकी खोज हुई। उसको समझा। अब:—

यह आरज़ू है मेरी, न इन्सान न इन्सान को खाये।
अपने कर्म का बदला, किसी और भाँति निबट जाये॥
समझ गया कर्म सुधार होता है किसी आयत के पीछे।
बगैर दुख के इन्सान को न हरगिज़ समझ आये॥
ऐ मुल्क वालो सुन लो देता हूं हित से संदेशा।
इन्सान बन कर जीओ, फिर न करो अंदेशा॥

दाता की वाणी जो है कर्म सुधार में आई।
समझो राज असला को, लो अपना जन्म बनाई॥

—❀०❀—

"सतसंग के वचन"—कर्मवाद

(ले०—दयाल नन्दूभाई दकन)

अपने मन वचन कर्म को वश में कर रक्खो !

कर्म करो आलसी और अपाहिज भी न बनो। क्षण मात्र भी बेकारी में न जाय। जीवन कर्म ही से बना है जिस स्थल में तुम रहते हो वह कर्म ही का स्थल है। जैसा देश वैसा भेष। कर्म के स्थान में रहकर कर्म का जीवन पाकर और कर्म की सामिग्री एकत्रित करके कर्म किये बिना किसी को छुटकारा कब मिलता है। ज्ञानी, ध्यानी, योगी, तपस्वी, ऋषी, मुनि, देवता, मनुष्य, जीव जन्तु सभी कार्य कर रहे हैं। तुम नहीं देखते सूर्य भगवान रात दिन चक्कर में पड़े हुए इधर से उधर ढलकते रहते हैं। क्या तुम नहीं जानते यह चन्द्रमा यह तारा मण्डल ये सप्त ऋषी रात दिवस कर्म के हिंडोले में झूल रहे हैं। यदि विचार के साथ देखा जाय तो तुम्हारी ही दृष्टि से तुम्हारा ईश्वर भी कर्म के झूले में बैठा हुआ बड़े आनन्द के साथ पैंगें मार रहा है। कर्म तो सभी करते हैं और कर रहे हैं किसी का कार्य स्वारथ्वश है और किसी का कार्य दूसरों के लाभार्थ है तीसरा एकदम निःस्वार्थ बन कर कर्म करना है और चौथे का कार्य प्राकृतिक और स्वाभाविक है। ये स्वार्थ और निःस्वार्थ दोनों से ऊँचा है और जब यह दशा है तो तुम कैसे करम न करोगे। कर्म तो तुमको भी करना ही पड़ेगा चाहे प्रसन्नता से करो या अप्रसन्नता से करो प्रकृति माता कर्म के स्थान में तुमको निकम्मा कब बैठने देगी। यहाँ पर निकम्मे का काम ही नहीं है। कर्म करना ही

जीवन है। जीवन स्थापन के लिये हाथ पाँव मारना ही पड़ेगा। जीवन को उच्च बनाने के लिये परिश्रम और उद्योग आवश्यक है। इनसे छुटकारा नहीं है यह सत्य है ? उपनिषद् कहते हैं कि कर्म अन्धकार है, कर्म अज्ञान है और यह सच भी है तो किसके लिये और किस अवसर पर वह उद्देश्य, वह शिक्षा और वह चेतावनी तुम्हारे लिये नहीं है तुम तो अभी कर्मी जीव हो और जीव को कर्म करना ही पड़ेगा। जब ज्ञान होगा तब कर्म को अज्ञान और अन्धकार कहना उचित होगा। उस समय से पूर्व जो मनुष्य कर्म की बुराई करता है और बिना सार को समझे हुये यों ही बकता रहता है वह अच्छा नहीं करता। तुम ऐसा न करो। तुम कर्म करो और अवश्य कर्म करो यह तुम्हारे लिये चेतावनी है।

परन्तु कर्म करने में इस बात का हर समय ध्यान रहे कि यदि तुम्हारे कर्म से किसी को हानि तो नहीं पहुँचती है नहीं तो वह कर्म लाभदायक नहीं होगा बल्कि हानिकारक होगा। हमारे शास्त्र कहते हैं "अहिंसा परमो धर्म" बौद्ध और जैनियों का भी मुख्य उद्देश्य है "अहिंसा परमो धर्म" सन्तों का वचन है, किसी का हृदय भूलकर भी न दुखाओ यह परम धर्म है मुसलमान सूफ़ी कहते हैं।

दिल न दुखा किसी का दिलबर।
सुना है कि यह है खुदा का घर॥

चीन के फ़िलोसफ़र का कथन है "जो अपने लिए पसन्द नहीं करते वह औरों के लिए भी मत पसन्द करो।" जितने शुद्ध आत्मा और धर्मात्मा मनुष्य हैं' सब का यही सिद्धान्त है और कथन है कि किसी को हानि न पहुंचाई जाय 'सौ स्याने एकी मत' और जब ये दशा हो तो हमको तुमको और सारे मनुष्यों को ऐसा ही कर्म करना चाहिये कि किसी को भी उससे हानि न पहुंचे

जो इस अमूल्य सिद्धान्त पर ध्यान रखते हैं वे देवता हैं। और जो इस पर ध्यान नहीं रखते हम स्वयं नहीं जानते कि उनको क्या कहें और वह क्या हैं।

कर्म करते समय कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है पहले काम अगड़म बगड़म न हो दूसरे कार्य में अशुभ भावना न हो तीसरे कोई कार्य ऐसा न किया जाय जो किसी की हँसी उड़ाने के लिए हो। इन तीनों प्रकार के कर्मों से सदैव बचना चाहिये। कर्म जो किये जांय उनमें कई बातों का ध्यान रहे। पहले कर्म करते समय शुभ भावना हो दूसरे चित्त को प्रसन्न और पवित्र रखकर हठधर्मी से बचकर उच्च विचार के साथ कार्य करना चाहिये तीसरे कार्य किसी प्रयोजन से हो। चाहे उसमें अपने लाभ का ध्यान रहे या सर्व साधारण की भलाई का ध्यान रहे यह दो बातें आवश्यक हों कहा गया है कर्म निष्काम करो काम में स्वार्थ साधन न हो यह सच है परन्तु आज तक किसी ने यह नहीं कहा कि कर्म में परोपकार या दूसरों की भलाई का ध्यान न रहे। यदि यह दूसरा विचार न हो वह कर्म फिर किस काम का होगा।

कर्म का करना तो अपने अथवा दूसरे के उपकार ही के लिए है। निष्काम करना अपना स्वार्थ नहीं बल्कि दूसरों के लाभ का ध्यान रखना है। ऐसा क्यों है? इसका कारण यह है कि जो कर्म दूसरों की भलाई के विचार से किये जांयगे। चाहे उसमें मनुष्य की अपनी भलाई न हो किन्तु उसे और प्रकार से दूसरों से अधिक लाभ पहुँचेगा उसका चित्त शुद्ध निर्मल और पवित्र बनता जायेगा तो वह कर्म स्वाभाविक कर्म होने के कारण तुमको एक बेजान और जड़ बना देगा और जैसे तुम स्वाभाविक कर्म नहाना, धोना करने लगते हो उसको भी करते रहोगे। और मन को जब शुभ भावनाओं का ध्यान न रहेगा तो वह जैसे का

तैसा बना रहेगा इसलिए कार्य तो कभी निष्प्रयोजन न हो तो अपना नहीं तो दूसरों के उपकार का ध्यान अवश्य रक्खा जाय जिससे बावलापन और जड़ता तुम में न आने पावे और तुम चैतन्य बने रहो विषय गूढ़ और बारीक अवश्य हो इसे विचार के साथ समझ लेना तब तुमको लाभ होगा।

कर्म भक्ति और ज्ञान ये तीनों भी कर्म ही हैं साधारण कर्म इन्द्रियों की सहायता से होता है। भक्ति का मन से संबंध है। और ज्ञान का बुद्धि से कर्म से शरीर पवित्र होता है। उपासना से मन शुद्ध होता है। और ज्ञान से बुद्धि निर्मल होती है तीनों के तीन गुण हैं। और स्वार्थ उन तीनों ही में है हाँ उनके रूप में भेद अवश्य है कर्म में स्वार्थ का ध्यान है, भक्ति में ईश्वर की पूजा का ध्यान और ज्ञान में सार वस्तु तक पहुँचने का यत्न है, धार्मिक फ़िलसफे के यह तीन कर्म हैं बिना सोचे समझे अगड़म बगड़म हँसी दिल्लगी में भी कोई ऐसा कर्म न करो जो किसी प्रकार से औरों के लिए हानिकारक और दुःखदाई हो। स्मरण रहे! कि प्रत्येक कर्म की बेल फैलते २ सारे जगत में फैल जाती है और वह बहुत ही प्रभावशाली होती है एक कर्म से सैकड़ों कर्म उत्पन्न होते हैं। वह कर्म बीज हैं। यह सहस्रों उसके फल हैं। उनसे भी अपनी बारी अनगिनत बीज वृक्ष और फूल फल उत्पन्न होते हैं क्या ऐसी दशा में हमको तुमको और सब समझ बूझ वाले मनुष्यों को कर्म की राह में संभल २ कर और फूँक फूँक कर पाँव रखने की आवश्यकता नहीं है।

संभल संभल पग रख या जग में।
मत कोई सूल लगे तेरे पग में॥

शब्द

सहज में सब काम करना सहज वृति धार कर।
सहज में परमार्थ हो और सहज में व्यौहार कर॥

सहज बृति मुख्य है उत्तम है सुमिरन और भजन।
है अधम तीरथ बृत संगत से सत के प्यार कर॥
गुरु पशु बनना नहीं अच्छा गुरू का मन्त्र ले।
मन्त्र लेकर सहज में भव जल से बेड़ा पार कर॥
भक्ति कर भक्ति समझकर भक्ति को चित दे सदा।
भक्त हो जा भक्त जन के मेल का सतकार कर॥
राधास्वामी मत है क्या अनुभव से समझेगा उसे।
अनुभवी हो काम मद और लोभ मन से मार कर॥

अजर अमरपन

(ले० परमदयाल फ़क़ीरचन्द जी महाराज)

संतों और पूर्ण पुरुषों के विचार में आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है मैंने अपना जीवन उस मालिक परम तत्व की खोज अथवा योगादि में व्यतीत किया। मौज मुझे अपनी कुरेद और प्रबल इच्छा के अन्तर्गत दातादयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज के परम पुनीत अस्तित्व के चरण कमलों में ले गई। आपके अस्तित्व ने संत कबीर, राधास्वामी दयाल, गुरु नानक और उपनिषदों के ऋषियों की शिक्षा के अनुसार अजर अमर पद में प्रवेश करने के लिए संस्कार दिया एक इच्छा थी कि जो कुछ अनुभव होगा वह संसार को बता जाऊँगा, इसलिये ऐसा कहता रहता हूँ।

अब शरीर बृद्ध हो रहा है। अनुभव करता हूं कि वास्तव में मेरा अपना आपा अजर अमर है। वह कैसे? आज १४ वर्ष से मुझे ऐसी अवस्था जीवन में कभी नहीं आई जब मैं अपने आपको भूल जाऊँ। १२ वर्ष पूर्व मैं गहरी निद्रा ... आपको भूल जाता था किन्तु अब किसी दशा

में अपनी चैतन्यता को नहीं भूलता हूँ। मैं फ़क़ीरचन्द के नाम व रूप और शारीरिक बोध, भान को तो भूल जाता हूं किंतु अपने आप को नहीं भूलता हूँ। अब यह दशा आरही है कि सांसारिक व्यवहार अपने विचारों के जगत को देखने, सुनने अथवा खेलने में मेरा अस्तित्व रोचकता नहीं लेता है और उन्मत्त अवस्था छाई रहती है। यदि रुचि रहती है। तो अधिकतर अनुभव की दशा को पसन्द नहीं करती है।

कारखाने में कार्य करता हूँ जिसके लिए विवश हूँ। किंतु एक प्रकार की मानसिक शिथिलता का बोध होता है। आज दो घटनायें सम्मुख आईं।

(१) कारखाने में एक कर्मचारी ने मेरी विस्मादि को अवस्था में मेरी जेब से रुपया निकाल लिया और फिर वापिस कर दिया।

(२) प्रातः मेरी पत्नी को नकसीर आरही थी जो लगभग २ घंटे रही। घर से चला आया। दोपहर को चौधरी रायसाहब ज्ञानसिंह ने आकर सूचना दी कि अब माता जी अच्छी हैं। मुझे न कोई स्त्री का ध्यान था और न उसकी बीमारी का, वरन् घरबार का ध्यान न था। और स्वाभाविक रूप में शरीर कार्यालय में कार्य करता रहा।

मैं तुरन्त डाक्टर के पास गया। अपनी दशा बताई। उसने एक आना लिया और एक गोली देदी। विचार हुआ कि कहीं मस्तिष्क की तो खराबी नहीं हो रही है। महसूस करता हूं। कि जीवन सांसारिक कार्य के योग्य नहीं रहा।

क्या कोई डाक्टर अथवा वैद्य अपनी सम्मति दे सकता है। विशेष रूप से पं० बलिराम वैद्य, जो मेरे अत्यन्त प्रेमी हैं, उनसे प्रार्थना है कि यदि वह रोग सभझते हैं तो क्या वह कोई उपचार कर सकते हैं। मैनेजर 'मनुष्य बनो' इसकी एक प्रतिलिपि उनको भेज दें।

जहां तक परमार्थिक अथवा आत्मिक मार्ग का सम्बन्ध है स्पष्टतः किसी महर्षि, संत अथवा पूर्ण पुरुष ने निज अनुभव के आधार पर इस सम्बन्ध में कोई प्रकाश नहीं डाला है। संकेत अवश्य है। मौलाना रूम कहते हैं 'ख्वाबो बेदारी यकसांशुद।' स्वामी जी महाराज ने जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त आदि से आगे का वर्णन संकेत रूप से किया है। मेरे अनुभव में यह आया है कि एक ऐसी अवस्था अथवा देश है जहां स्थायी अमरपन है। चूँकि मुझे यह सिद्ध हुआ है कि मैं जो वास्तविक वस्तु इस शरीर के भीतर विद्यमान है वह:—

जिस्म की जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति से न्यारी है।
वह मन के तखैयुल के असरात से भी न्यारी है।
आनक मस्ती वज्द के आलम से भी अलहदा रहती है।
हां फँस कर इनमें वह दुख सुख आनंद लेती है॥
और इसको सन्त कबीर की वाणी सिद्ध करती है।

१—अजर अमर एक नाम है सुमिरन जो आवे।
बिना मुखड़ा से जप करो नहीं जीव डुलाओ॥
उलटी सुरत ऊपर करो नैनों दरसाओ।
जाओ हँसा पच्छिम दिशा खिड़की खुलवाओ॥
त्रिबैनी के घाट पर हंसा न्हाओ।
पानी पवन की गम नहीं वही लोक मझारा।
ताहि बिच एक रूप है वही ध्यान लगाओ॥
जमी आसमान वहां नहीं वह अजर कहावै।
कहैं कबीर सोइ साधु जन वा लोक मझावै॥

२—कहूं उपदेश के बतियां जहां नहिं होत दिन रतियां।
नहीं रवि चन्द्र और तारा, नहीं उजियार और अँधियारा॥
नहीं यहां पवन और पानी, गये बहि देश जिन जानी।
नहीं तहां धरनि आकाशा, करै कोई संत तहां वासा॥

वहां गम काल की नाहीं, तहां नहिं धूप और छाहीं।

ऐसी ऐसी वाणियां सुनकर, पढ़कर जीवन का रुझान इस ओर अथवा और समस्त जीवन खोज की कि वह अजर अमरपन व देश कहां है। दूर, दूर, दूर वह देश है। सन्त कबीर की वाणी सुनो। मैं ही कह देता किंतु मैं कविता के नियमों से अपरचित हूं। दूसरे जगत प्राचीनता का उपासक है:—

दूर गमन तेरा हंसा हो घर अगम अपार।
नहिं काया नहिं माया हो न त्रगुन पसार।
चारि वरण वहां नाहीं हो न कुल व्यवहार॥
नौ छः चौदह विद्या हो न वेद विचार।
जप तप संयम तीरथ न हो नेम अचार॥
पांच तत्व का उत्पति हो न परले के पार।
तीन देवता तेतिम हो दसो औतार॥
सो रहो शंख को आने दो एक गति अपरम्पार।
कोटि भानु के शोभा हो एक राम उजार।
त्तर अक्षर से न्यारा हो सोई नाम हमार॥
सोइ शब्द लाये हों मृत्यु लोक मझार।
चार गुरु मिले थापल हो जग फेंकनहार॥
उन कर बहियां उवारहु हो हंसा उतारव पार।
जम्बू द्वारिका हंसा हो गहु शब्द हमार॥
साहिब कबीरा हिहल हो निगुण खसाल।

हम सब उस देश से आये हैं:—

हमको वहां से आने में लगे बे अन्त साल जिनका वार न पारा है
कहूं सत मगर कौन सुने और कौन मानन हारा है॥

किन्तु

यह समय कलयुग का है जहां और बातों की उन्नतियां हैं, नये नये आविष्कार हो रहे हैं, वहां वास्तविक रहस्य और वास्तविकता को पाने का भी यही समय है।

देखो सूर्य की किरण को इस पृथ्वी तक पहुँचने के लिये समय लगता है। वह ७॥ सैकिन्ड हैं। विज्ञान ने सिद्ध किया है ऐसे ऐसे तारागण इस जगत में विद्यमान हैं जिनकी किरणों को पृथ्वी तक पहुंचने में वर्ष या २ वर्ष लग जाते हैं। इसी प्रकार वह अजर अमर जो देश है उसकी किरणों को यहां तक पहुंचने में वर्षों लगते हैं और इसी कारण से यदि इतिहास को पढ़ो तो मानवीय जीवन उस मण्डल में वनस्पति और पशु पक्षी के पश्चात् उत्पन्न हुआ है। चूँकि वह शक्ति जो मनुष्य में हैं सबसे श्रेष्ट है और सब प्रकार की शक्तियाँ नाशवान हैं क्योंकि वह मिश्रित हैं। मानव अस्तित्व मिश्रित नहीं है। अतः मानवीय अस्तित्व समस्त रचना से श्रेष्टतर है।

"मुफ़रिद रचना हमरे देश। जहाँ न काल कर्म का लेश॥'
बरसहा बरसों के पीछे जन्म और जन्मान्तरों के बाद।
हमने पाया राज़ अपना हो गए हैं दिल में शाद॥

किंतु यह थोड़ा सा दुख अवश्य होता है। वह भी शारीरिक और सांसारिक सम्बन्ध के कारण। आगे क्या होगा ज्ञात नहीं।

ऐ मेरे मिलने वाले मित्रो, भाइयो प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई जनून है। मुझे भी था और अभी शेष है। मुझे जनून था उस मालिक तथा परमतत्व के मिलने का। जो कुछ अनुभव हुआ वह विभिन्न लेखों व व्याख्यानों में व्यक्त किया। अब अंतिम अवस्था है। जो कुछ अनुभव में आयेगा वह वर्णन कर जाऊँगा

गो वानी मेरी मदद कर नहीं सकती,
निज अनुभव को ज़ाहिर नहीं कर सकती।
कोई सहमत न हो ज़िन्दगी परवाह नहीं करती,
साफ़ बयानी से नहीं है अब डरती।

इस अनुभव के आधार पर मैंने करी पुकार,
इन्सान बनो तुम दोस्तो यह है सार का सार।
खुदा, राम मालिक तुम्हारी ज़ात है,
यह समझा सार का सार है।

मनुष्य ने अपने अज्ञान से खुदा, ईश्वर, मालिक के नाम पर सहस्रों धर्म बनाये और उसके नाम पर रक्तपात, घृणा और द्वेष झगड़े उत्पन्न किये। कलयुग में संत आये, उपनिषदों के ऋषि आये। मानवीय बड़प्पन का गीत गा गये। वर्तमान घटनाओं ने मस्तिष्क पर प्रभाव डाला था। सन् १९४७ की १५ अगस्त को पुकार की कि कैसा अच्छा होता यदि मानव मानव को समझ कर जीवन व्यतीत करता हुआ अपने निज देश को जाता।

इस देश में जाने अथवा स्वयम् अजर अमर पन की अवस्था में आने के लिए प्रेम मार्ग की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि यह प्रेम किसी वाह्य पूर्ण पुरुष से होगा तो उसके सतसंग से उसके संकेत से कार्य शीघ्र बन जायगा अन्यथा देर लगेगी। चूँकि प्रेम की सीढ़ियां हैं मैं वर्णन नही करना चाहता हूं। प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति, परिस्थिति और प्रकृति भिन्न होती हैं। इस-लिये किसी पूर्ण पुरुष से जो स्वयम् इस देश में रहता हो आदेश लेना आवश्यक है।

ज़िन्दगी हासिल है और हम ज़िन्दगी में शाद हैं।
रंजोग़म ऐशो तरब के वहम से आज़ाद हैं॥
हम न वीराना न वस्ती के कभी क़ायल हुये।
लामकां में घर है और इस घर में हम आबाद हैं।

मृत्यु

(ले०—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

हम सुनते रहते हैं और देखते रहते हैं कि जो कोई भी यहाँ

आया वह मर गया। अनेक मनुष्य अपने विचार को यहीं तक सीमित रखकर, समझ कर कि जो आयेगा वह जायगा, मन में शान्ति धारण कर लेते हैं और अनेक मृत्यु के दृश्यों को देखकर जितना जितना सम्बन्ध किसी के साथ होता है खेद करते हैं और अनेक उनके पश्चात् उनके स्मृति चिन्ह, उनके कार्यों का इतिहास बनाते हैं जो वस्तु स्वयम् नाशवान् है उसका इतिहास और स्मृति चिन्ह भी नाशवान होगा।

ऐसे विचार वाला मनुष्य विवश है कि सोचे कि यह जगत क्या है? ऐसे मनुष्यों को संसार दीवाना कहता है। किन्तु मेरे जैसे मनुष्य दीवाना बनने के लिये विवश हो जाते हैं। ऐसे मनुष्यों ने खोज की कि प्राणी मर कर कहां जाता है। वह अपना अनुभव छोड़ गये कि मानव की आत्मा अजर अमर और अविनाशी है। वह केवल चोला बदलती है। इसमें कहां तक सचाई है, मैं नहीं कह सकता। क्योंकि मन प्रत्येक वस्तु को स्वयं देखना, आजमाना चाहता था और अब भी यही दशा है।

मैं एक बार सुनाम में स्टेशन मास्टर था। दो वर्ष तक यह इच्छा प्रबल रही कि मनुष्य मर कर कहां जाता है। एक दिन तीव्र इच्छा हुई। गर्मी के दिन थे। स्टेशन पर कार्यालय में समाधि लगाकर मरने के लिये अथवा यह देखने के लिये कि मनुष्य मर कर कहां जाता है, बैठ गया। बा० गुलाम रसूल सिगनलर थे। उनको कहा मुझको बुलाना मत। लगभग १ घंटे तक अपनी सुरत को अथवा अपने आप को अपने मस्तिष्क में लेगया। जो कुछ उस समय अनुभव किया खेद! बता नहीं सकता हूँ और न अब स्मरण ही है। जब होश आया मस्तिष्क में भारीपन था। तबियत मतलाने को चाहती थी। उठा। स्टेशन के सामने पं० लक्ष्मनदास पनवाड़ी की दुकान थी वहां पहुँचा, उनको कहा कि एक छटांक अंगूर दे दो। मैंने अंगूरों को उसकी

तराजू पर तुलते देखा। बस फिर कुछ होश न रहा। क्या देखा ? पहिले अन्धकार फिर प्रकाश। इस प्रकाश में दातादयाल का मनोहर स्वरूप था फिर होश न रहा। जब होश आया तो देखता हूँ मैं सड़क पर पड़ा हुआ हूँ। दो आदमी मेरे सिर को उठा रहे हैं और दो आदमी पांव की ओर टांगें उठा रहे हैं। मैं हँसा और कहा मुझे घर न ले जाओ। स्त्री और बच्चे रोवेंगे। क्योंकि मैं देखना चाहता हूँ कि मरने के पश्चात् क्या होता है। फिर होश नहीं रहा। यह घटना दिन के १॥ बजे की है। संध्या समय ६॥ बजे जब मुझे होश आया तो क्या देखता हूँ कि सिविल-सर्जन सुनाम और मेरा प्राइवेट डाक्टर लाला मूलचन्द मेरे सरहाने खड़े हैं। मैं हँसा। ला० मूलचन्द डाक्टर को कहा, 'डा० साहब ! मैं देखना चाहताथा कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है ? खेद, खेद, खेद ! मरने के पश्चात् क्या होता है वर्णन नहीं कर सकता हूं। 'जैसा ख्याल वैसा हाल बस इतना समझ लो। इसके पश्चात् जीवन व्यतीत हुआ। अब अन्तिम समय है। प्रतिदिन मरता हूं और प्रतिदिन जीवित होता हूँ। मरना क्या है ? शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जगत का त्याग और फिर एक अनन्त अस्तित्व का रूप हो जाता हूँ।

लामकानी में घर हूँ करता और लामकानी बन हूँ जाता।
क्या कहूँ दुनियां वालो मौत नहीं है क्या होता॥
बाद त्याग अहसासात सारे, हस्ती मेरी लामहदूद होती है।
जिन्दगी क्या लब खुले और बन्द यह मालूम होती है॥

जिस्मफ़ानी, दिल है फ़ानी, रूह फ़ानी दोस्तो !
ख़्वाबवीं है ज़ात मेरी, ख़्वाब देखूँ दोस्तो !

फिर मृत्यु क्या है ? स्वप्नावस्था का परिवर्तन होते रहना। सम्भव है शास्त्रों का मन्तव्य अजर, अमरपन उस तत्व अथवा ज़ात से हो।

फिर मौत है किसको क्या करूँ ! प्रकृति खेल बनाया ।
इसी खेल का नाम है संतों ने, काल माया फ़रमाया ॥
बिनसत रहै सदा यह नये नये रूप बनाती ।
कभी कुछ बनती कभी कुछ बनती, अद्भुत खेल खिलाती ॥
ज़ात सदा है इसमें खेले वह सबका आधारा ।
खेल खिलाया अजब सुहाना, जीव जन्तु फुहारा ॥
सतगुरु की दया से मित्रो ! यह अनुभव हम पाया ।
इसीलिये हम रात दिवस सतगुरु का गुन गाया ॥

इस प्रकृति के खेल में यदि मनुष्य गुरू ज्ञान के सहारे रहता हुआ अपनी प्रकृति को अपने अधिकार में रक्खे तो वह अपने और दूसरों के जीवन में परिवर्तन ला सकता है ।

ज़ात इन्सां अज़र अमर है, न जन्मे, न मरे ।
अपनी इच्छा से वह हरथां नाना रूप धरे ॥

यह मृत्यु पर विजय पाने का रहस्य है । रहस्य क्या है ? समझ या ज्ञान का प्राप्त करना है और बस और जब तक जीवन है इसको व्यतीत करना है । इसके लिये मृत्यु का भ्रम छोड़कर जब तक जीवन है कार्य करना है क्यों ?

ज़ात सिफ़ात की खोज अक़्ली मन्तक़ साबित हुआ ।
अक़्ल को कहते हैं माया इसमें था फँसा हुआ ॥
फ़िलासफ़र, योगी, भक्त वह दीगर मज़ाहब वाले ।
सब के सब अक़्ल के चक्कर में हो रहे मतवाले ॥
मैं भी उनमें से एक था मेरे दोस्तो !
गुरु की दया से निकल गया माया के चक्कर से दोस्तो ।
जब तक है ज़िन्दगी काम करो, काम करो, काम करो ।
काम ही असली नाम है, काम, करो, काम करो काम करो ॥
जब तक है जीना, तब तक है सीना सुन लो ।
अन्जाम तलाश निकला है यह कि काम करो,काम करो ।

भ्रमियों, अज्ञानियों, निर्बलों को विभिन्न प्रकार से मन को लगाने की सामग्री पूर्वजों ने दी थी, किंतु वास्तविकता यह है जो मेरी समझ में आई है लब खुले और बन्द हुये यह राज़े ज़िन्दगानी है।

जब तक है जीना, काम करना, यह राज़े ज़िन्दगानी है।

मन यदि अशांति है तो मन को मन के साथ लगा रखने का साधन करो जिससे कि चित चंचल न रहे। तुम्हारा अपना मन ही भक्त और भगवान है। मन को मन से लगाना ही वास्तविक साधन और अभ्यास है। वर्तमान धर्म और पंथ वाले अपने अज्ञान से संसार को बाहिर्मुखी और ग़लत पूजा पाठ आदि की शिक्षा देते हैं। मृत्यु और जीवन केवल मन का खेल है। वास्तव में न कोई मृत्यु है, न जीवन।

पिण्ड देश और हड़ताल की कथा

[ले० महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज]

ईश्वर ने जब पिण्ड (मनुष्य शरीर) को रचा तो हाथ पाँव, कान, नांक, दाँत, जिव्हा, मन, आँख, पेट सब को एक एक, काम सौंप कर कहा "तुम सब मिले जुले रह कर अपना काम करो और तुमको सुख और शांति प्राप्त रहेगी।"

ईश्वर तो सबको समझा बुझाकर चला गया।

कुछ दिनों तक यह सब अच्छे रहे। फिर उनमें अनबन हुई। सबके सब पेट के पीछे पड़ गये और लगे उसे कोसने। तब उन्होंने मिल जुलकर पंचायत की।

पांव बोला—"इसी पेट के लिये मुझे बहुत जगह दौड़ना धूपना पड़ता है और मैं थक जाता हूँ।', "झगड़े बखेड़े मचते हैं सब पेट के लिये।"

हाथ ने कहा "इसी पेट के निमित्त मुझे काम काज करने पड़ते हैं और मेरा बल जाता रहता है। कारण है पेट दुख का विपति का यहां सदा।"

जिह्वा बोली "तुम तो एक २ काम करते हो। मुझे दुहरा काम करना पड़ता है। उसी के लिये मैं बातें बनाती हूँ। खाने पीने को चुक्ला कर उसे भरती हूँ। मैं अब उससे तङ्ग आ गई इस पेट ने किया है मुझे देख लो दुखी।

दाँतों ने कहा—' तुम तो फिर भी अच्छे हो। मैं इस पेट ही के लिये चक्की पीस पीस कर इसका पालन पोषण करता रहता हूँ। दाढ़ में पीड़ा हो जाती है। इस पेट के बखेड़े से उकता गया हूं मैं।'

आंख ने कहा—"इस पेट के लिए मुझे बुरा भला देखना पड़ता है यह न होता तो क्यों मैं ऐसे काम करती। इस पेट हो ने मुझको किया नष्ट और भ्रष्ट।

कान बोला—यह पेट बुरा है। इसके लिये मुझे बुरा भला उलटा सीधा सब कुछ सुनना पड़ता है। इसके साथ मैं रहना नहीं चाहता। अच्छा बुरा तो मैं सुनूँ और यह सुखी रहे।'

मन ने कहा-मुझे भी तो इसी निर्दयी के लिये बुरा भला सोचने और बन्दर के समान सौ सौ प्रकार के नाच नाचने पड़ते हैं। यह कैसा कृतघ्न है। सब की कमाई हड़प जाता है। कभी डकार लेता है और कभी नहीं भी लेता। अब मैं भूल कर भी इसका साथ न दूंगा।

दुख विपत के जाल में, मुझको फँसाया पेट ने।
रात दिन चिन्ता ग्रसित, मुझको बनाया पेट ने॥

सब इन्द्रियां एक-एक करके पेट का रोना रोईं। अन्त में सबने सम्मति दी कि "हड़ताल करदो। पेट के लिये कोई भी काम न किया जाये।" सब ऐसा ही करने के लिये उद्यत होगये।

पेट ने सबकी सुनी। कुछ नहीं बोला। इन सबको मूर्ख और अज्ञानी समझकर चुपका हो रहा। यह सब आलसी बन कर बैठ रहे।

एक दिन दो दिन बीते। अब तो सबकी अवस्था बुरी होने लगी। सब एक एक करके विकल और रोगी बन गये। जब यह दशा होगई सबने फिर पंचायत की। चौकन्ने होकर उठ बैठे और सभा की परन्तु सबकी अवस्था सोचनीय थी। बोलना चाहा पर बात न निकली। जिव्हा लड़खड़ाई। कान फटफटा न सका न हाथ हिला न पांव। आंख पथरा गई। नाक सिकुड़ गई। मन बेबस होगया। दांत खटखटाने लगे। यह क्या हो गया। हड़ताल करने को तो करदी परन्तु उसका परिणाम दुख ही हुआ।

तब अन्त में पेट ने आप ही उन सबको कहा "मूर्खो! तुम निपट अज्ञानी हो। तुमने समझा मेरे लिये काम करते हो और मैं सबके श्रम और कर्म का फल अकेला खा जाता हूं। यह तुम्हारी भूल है। सोचो! मैं तो केवल तुम्हारे लिये भँडारी का धर्म पालता हूं। जो कुछ तुम लाते हो तुम्हारे ही लिये मैं अपने भण्डार में रख लेता हूं और तुम सबसे अधिक मुझे तुम्हारे ही लिये काम करना पड़ता है। आहार को अपने भीतर रखकर मैं उसे पकाता हूँ। लेई बनाकर रस, लुहू, मज्जा, धातु, वीर्य और ओजस बना बनाकर तुमको बाँट दिया करता हूँ। तब तुम में शक्ति और बल आता है। एड़ी से लेकर चोटी तक सबको सब कुछ दे दिलाकर बलवान बना रखता हूं। तब ही तो तुम काम करने के योग्य होते हो। तुमने यह नहीं समझा। मुझे कोसने लगे और उलटा बुरा भला सुनाने लगे! मैं अकेला तुम सबका काम करता हूं। देखो! मैं कृतघ्न हूं या तुम सब कृतघ्न हो। जो

होना था होचुका। अब उठो काम में लगो। ऐसी भूल फिर कभी न करना। नहीं तो पछताना पड़ेगा।

सब लज्जित हुए। पेट से क्षमा माँगी। काम में उद्यत हुये। और जब पेट ने अपनी बारी पर सबको आहार दिया तब फिर वह बल पौरुष और पराक्रम वाले बने।

ईश्वर दूर खड़ा हुआ उनकी लीला देख देखकर मुस्कराता रहा और बोला 'यह हड़ताली कैसे मूर्ख थे। हड़ताल से अपनी ही हानि कर बैठे। और अन्त में इन्हीं को पछताना पड़ा।'

बिना समझे बूझे हड़ताल का यही परिणाम होता है।

बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपना जग में होय हसाय॥
जग में होय हसाय चित्त में चैन न पावे।
खान पान सम्मान राग रंग मनहि न भावे॥
कह गिरधर कविराय जगत का यही है लेखा।
घूमे देश विदेश जगत में यही है देखा॥

—❀०❀—

शब्द

सब रहौ मिल जुल के मिल जुल करौ सब काम को।
देखना अनबन न होने पावे तुम में नाम को॥
तज के आलस और निद्रा त्याग दो परमाद को।
काम में लाओ सदा तुम दिन के आठों याम को॥
एक छिन बेकाम रहना भी कभी अच्छा नहीं।
काम से पाते हैं निर्धन अर्थ मुक्ति धाम को॥
राधास्वामी योग साधो राधास्वामी योग पढ़।
जीते जी सुख अन्त में लो सत का पद सत धाम को॥

—❀:❀—

उपयोगी बातें

१—सब से मिलो जुलो मीठी बातें बोलो। कड़ुवी बातें जिह्वा से न निकालो यह प्रेम और प्रीति है।

२—यदि किसी से भूल चूक होती है तो कठोर मत बनो उसे निर्बल समझ कर क्षमा कर दो। यह क्षमा है।

३—सच्चों को देखकर प्रसन्न हो। स्वयं सच बोलकर प्रसन्न रहो और दुख तुमसे प्रथक होता चलेगा, यह प्रसन्नता है।

४—किसी के पीछे न पड़ो। यदि किसी को सत्य से प्यार नहीं है और उसे ग्रहण नहीं करता तो उससे उलझना, विवाद करना तथा लड़ना झगड़ना अच्छा नहीं है। तुमको उससे अलग थलग होकर रहना चाहिये। यह बेपरवाई है।

५—घृणा को घृणा से परास्त नहीं किया जाता। घृणा को प्रेम से विजय किया जा सकता है।

६—मनुष्य में दया होनी चाहिये। सबसे अपराध होते हैं उन पर कृपा करो। उनके पीछे कभी न पड़ो। दयालुता और कृपालुता से उनका साहस बढ़ाओ।

७—प्रसन्न चित्त रहने की आदत डालो। जो प्रसन्न रहता है वह सदैव सीधे मार्ग पर चलता है। अधिक कार्य करता है। जो प्रसन्न नहीं रहता दुखी होता है उसका कोई कार्य नहीं बनता।

—❀❀—

परमदयाल फ़क़ीर साहब का पत्र भाई कुवेरनाथ जी मुख्तार के नाम

मुझको धन, सम्पत्ति, मान, प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं रही। मैं खोजी था और जो कुछ समझा वह सुन लो। क्या पता कि

यह पत्र आपको सदैव के लिये निर्बन्द, निद्वन्द मुक्त और शाहों का शाह बना देवे।

सुन कुबेर आज एक सत्त पुरुष की बानी।
यह वाणी नहीं है यह है असली सुख की खानी॥
भूल भ्रम में जग फँस फँस घबरावै।
सांची बात न कोई किसी को बतावै॥
गुरु गम है इक अजीब भेद निराला।
जब से समझा मैं हुआ हूँ सुखाला॥

वह भेद क्या है? मनुष्य समझता है कि कोई इसको तारेगा अथवा उसको कोई मुक्ति देगा, सुख, देगा आनन्द देगा प्रीतम से मेल करा देगा। यह गलत है। मनुष्य स्वयम् अपने भ्रम में फँसा हुआ है। मैं स्वयम् वह भी था। यह समझता था कि कोई वाह्य गुरू सहायता करता है, दूर बैठा हुआ शिष्य की सँभाल करता है। यह गलत है मेरे प्यारे सर्वाधार दाता दयाल ने दया करके मेरे भ्रमों का नाश करने के लिये मुझको गुरू पदवी देकर यह रहस्य मुझको समझा दिया और परम संत और पूर्ण पुरुष बना दिया। मेरे फ़रीद कोट में रहते हुये ब्रह्मा लाइलपुर व अन्य स्थानों के जो सतसंगी वाह्य प्रभावों के विचार से विश्वास रखते हैं कि मैं संत हूँ और उनके अभ्यास में प्रकट होता हूं और जो आन्तरिक दृश्य उनको दिखाई देते हैं वह क्या है। वह उनका अपना विचार है। देखने के लिए एक पत्र की प्रतिलिपि नमूने के रूप में तुमको भेज रहा हूँ। पढ़ो। देखो कुबेरनाथ! मुझे कोई पता नहीं था अथवा है कि वह कौन था जो इस समाधि को अथवा दूसरे सत संगियों को उनके भीतर प्रकट करता है। यह उनका अपना विश्वास, अपना विचार और अपना ही मन है। मनुष्य अपने ही भ्रम में फँसकर सुख दुख आनन्द तथा अन्य दृश्य देखता है और स्वयं अपने ही भ्रम में आकर मस्ती, खर-

मस्ती, प्रसन्नता आदि के खेल देखता है। समस्त योगी, ज्ञानी ध्यानी, तपस्वी, मानी अभिमानी, नियमी, धर्मी समस्त अपने मन के भ्रम में फँस फँसाकर आप जकड़े हुये हैं। और गुरू अपने स्वार्थ और अपनी गरज में फँसकर इन अज्ञानी जीवों को अपना अस्त्र बनाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। जीव अज्ञानी हैं, निर्बल हैं, इस मन के मारे हुए दुख सुख का आनन्द बे आनन्द के दृश्य देख देख कर नाचते हैं। इस दशा को देखकर सत पुरुष राधास्वामी दयाल ने सतसंग आरम्भ किया। और मन को एकाग्र करने का रहस्य बताया था किंतु गुरुओं ने अपनी पूजा कराने के लिये स्वांग बनाकर अज्ञानी जीवों को लूटना आरम्भ किया। ऐ कुबेर ! संसार में काल मत का जोर है मनुष्य अपने मन की चालों से दुखी और सुखी होता है। हुजूर दाता दयाल ने दया की। मेरा जीवन अनुभव से गुजार कर मुझको यह भेद दिया। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य अपने रूप को पहिंचान कर एक दूसरे की सहायता करें। राधास्वामी मत में पूर्ण गुरू की महिमा है। पूर्ण गुरू वह है जो मनुष्य के भ्रमों का नाश करे और मनुष्य को अपना जैसा बनाकर सतपुरुष बनावे। ऐ कुबेर नाथ ! रहस्य को समझ और संसार से झूँठे गुरूपन को समाप्त कर और जीवों को उनके रूप को बताकर एक दूसरे की सच्ची सहायता करने के लिये तैयार कर मैं गुरु ही नहीं वरन् गुरुओं का गुरू हूँ। इस-लिए कि मैं सार भेद से परिचित हूँ और एक सतपुरुष हूं। मैं यह कहता हूँ कि हम सब एक जैसे हैं जैसा मैं वैसे तुम और वैसे ही अन्य कोई अन्तर केवल इतना है कि एक अज्ञानी है, निर्बल है, अबल है और एक रहस्य से परिचित है मन का पूर्ण बलवान और शक्तिवान है।

ऐ कुबेर ! जो कुछ है वह मनुष्य का अपना मन है। जैसा ख्याल वैसा हाल। बाहरी पूर्ण पुरुष कीपरमावश्यकता है

किन्तु पूर्ण पुरुष की बात को कोई नहीं सुनता। समस्त संसार कालमत के प्रभाव में है। वास्तविक वस्तु केवल पूर्ण पुरुष का सतसङ्ग है। मैंने वह रहस्य तुमको दिया है जो आज तक किसी ने स्पष्टतः नहीं कहा अब आवश्यकता है कि भारतवर्ष में से घृणा द्वेष दूर हो और मनुष्य मनुष्य के काम आवे। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य को सार भेद, सार ज्ञान मिल जावे। मैंने इसी-लिये यह कार्य अपने ऊपर लिया है किन्तु मनुष्य सतसङ्ग नहीं करते हैं और करते भी हैं तो वचन को गृहण नहीं करते। रोचक और भयानक बातों में लोगों को गुरूजन फँसाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। समस्त आयु अपना शिष्य बनाकर उनको बोझ का पशु बनाते रहते हैं। मेरे दातादयाल ने मुझ पर दया की। मुझ अज्ञानी को चरण कमल की छाँह दी और चरण कमल में लेकर मुक्त कर दिया। अब मैं रात दिन गुरू का गुण गाता फिरता हूं।

मैंने तुमसे रहस्य को छिपाया नहीं क्योंकि तुमको अधि-कारी समझा मेरी वाणी सत्त गुरु है। निर्बन्ध है, सत्य है। यदि प्राणी न समझे तो मैं क्या करूँ। मनुष्यों को प्रारम्भ में रोचक और भयानक बातों से सतसङ्ग का निवेद दिया जाता है। जो परिचय मनुष्य को मिलते हैं वह प्रत्येक व्यक्ति के विश्वास का परिणाम है इन परिचयों में वास्तविकता नहीं है। वास्तविकता केवल शब्द के पकड़ने में है।

ऐ कुबेर! सब कुछ तेरे मन में है, बाहर कुछ नहीं है। बाहर केवल पूर्ण पुरुष का सतसङ्ग है। मुक्त पुरुष की वाणी ही गुरू है। दातादयाल मेरे प्रिय, सर्वाधार के अवतार थे। वे सत् पुरुष थे उन्होंने दया की 'गुरू महिमा अब मैं जान गया।' ऐ कुबेरनाथ! यह पर्दादारी का काम है। आप से पर्दादारी नहीं हैं। मैंने जब से यह समझ पाई हुजूर दातादयाल का सेवक होगया।

उनकी शिक्षा को स्पष्ट शब्दों में अधिकारियों को देता हूँ। किन्तु सच्ची बात कौन सुनता है। मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम सब गुरू की शिक्षा को फैलाओ किन्तु पर्दे से जीव दुखी हैं। मोह, माया, काम, क्रोध व अन्य बोध-भान से दुखी हैं। उठो! साहस करो! गुरू का कार्य करो। अभ्यास निरन्तर करना। मानसिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य आपके लिये आवश्यक है। साँसारिक कार्य ज्यों का त्यों रहे।

जान बूझ अनजान बन, ज्ञान पाय अज्ञान।
बल पौरुष से रहित हो, तब सच्चा बलवान॥

मनुष्य की अशान्ति का कारण उसका अस्वस्थपन होता है। यह अभ्यास मनुष्य के वीर्य और मन को एकाग्र करता है। दयाल तेरी जात है। प्रिय कुवेर! संसार में यदि झूँठा गुरूपन न होता तो कभी भी मैं यह बोझ अपने ऊपर नहीं लेता। मैंने केवल वास्तविक रहस्य को खोलकर बताने और जीवों की सँभाल के लिये लिया है।

—❀❀—

शान्ति की प्राप्ति

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज)

कल एक सज्जन ने मेरे एक मित्र के द्वारा १००) भेंट के रूप में मुझे भेजे और प्रार्थना की कि उन्हें शान्ति प्राप्त हो मैं मन में प्रवेश करके सोचता हूँ कि मैं या अन्य कोई महात्मा यथार्थ में किसी को शान्ति दे सकते हैं अथवा नहीं। गत तथा वर्तमान महात्माओं के सम्बन्ध में तो मुझे कोई ज्ञान नहीं कि उनका क्या विचार है। हाँ मेरे विषय में मेरे भीतर से पुकार आई कि हाँ और नहीं। यह विपरीत उत्तर कैसा? शांति के इच्छुक और वास्तविकता के अभिलाषी मेरे लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ें ताकि वास्तविकता उनकी समझ में आजाय।

मित्रो ! पहिला ध्यान देने योग्य प्रश्न यह हैं कि शान्ति की अभिलाषा का कारण क्या है ? अशान्ति । अब प्रश्न होता है कि अशान्ति का क्या कारण है ? कोई कारण अवश्य होना चाहिये । क्योंकि बिना कारण के कार्य नहीं होता । अशान्ति का कारण नाड़ी-विधान की कमी है । यह नाड़ी-विधान तीन प्रकार का होता है शारीरिक, मानसिक और आत्मिक । शारीरिक नाड़ी कहलाती है जिनमें से विभिन्न प्रकार का पदार्थ शरीर के भीतर संचालन करता रहता है । मानसिक नाड़ी इङ्गल और पिंगला कहलाती है और आत्मिक नाड़ी सुषुम्ना कहलाती है । शारीरिक नाड़ी-विधान को औषधियों द्वारा ठीक किया जा सकता है । किन्तु मानसिक नाड़ी-विधान को विचार शक्ति के द्वारा बदला जा सकता है और वह भी अधिकार के अनुसार और आत्मिक अशांति को आत्मिक बल से दूर किया जा सकता है । ध्यान रहे । मानसिक बल योगी और आत्मिक बल या शक्ति केवल पूर्ण पुरुष अथवा इच्छा रहित पुरुष दे सकता है ।

अब प्रश्न उठता है कि यह खराबी आती क्यों है ? इस का उत्तर यह है कि प्रकृति में बनना और बिगड़ना आवश्यक है । "जो उपजै सो विनसै" हाँ, यदि यह बिगड़ना समय पर और प्रकृति के नियम के अनुसार हो तो अशांति कम होती है और यदि अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के कारण समयसे पूर्व हो तो अशांति अधिक होती है । मेरा निज अनुभव यह है कि ८०% व्यक्ति जो अशांति के कारण दुखी हैं वह वे हैं जो शारीरिक और मानसिक रूप से व्यभिचार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं । इसलिये उनका अपना अज्ञान और त्रुटि पूर्ण जीवन विधि उनके अपने लिए दुख का कारण बना हुआ है । इस विचार को ध्यान में रखते हुये धार्मिक जगत के उच्च कोटि के महात्माओं ने वर्णन किया:—

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

"अरे मन रसिया, काया के बसिया, छोड़ हमारी डगरिया हा।"

प्रत्येक धर्म के ग्रन्थों का अध्ययन करो। सभी ने विषय विकार के जीवन के विरुद्ध पुकार की है। जीवन स्वयं एक प्रकार का विषय है, किंतु इसमें उसकी आवश्यकतानुसार होना ही पर्याप्त है। प्राचीन ऋषियों ने विस्तृत अनुभव के पश्चात् २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी थी और इसी विचार को ध्यान में रखते हुये परम पुनीत हुजूर राय सालिगराम साहब बहादुर ने 'संतसंग्रह' नामक पुस्तक में स्पष्टतः वर्णन किया है कि जो सतसङ्गी नाम लेता है और विषय विकार से अपने आपको नहीं बचाता वह कदापि नाम का अधिकारी नहीं है। और न उसे शान्ति ही मिल सकती है। इसलिये शांति के खोजी को शारीरिक और मानसिक रूप में अपने वीर्य की रक्षा करनी चाहिये। अशान्ति का दूसरा कारण यह है कि मनुष्य अनावश्यक इच्छाओं और सम्बन्धों को मन में स्थान देता रहता है। और समय आने पर वह उसकी आपत्ति का कारण बन जाते हैं। सन्त पुरुष राधास्वामी दयाल की वाणी है:—

'काम अपना करो भाई पराये काम क्यों लगना।
धाम अपने चलो भाई, पराये धाम क्यों बसना।'

वास्तविकता के दृष्टिकोण से संसार में कोई किसी का नहीं है। प्रत्येक अस्तित्व अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करने के लिये विवश है। इसलिये व्यर्थ किसी के कार्य में हस्तक्षेप करना कभी २ दुख और आपत्ति का कारण बन जाता है। आलोचना की टेब से बच कर रहो।

अशांति का तीसरा कारण अज्ञान है। सांसारिक जीवन में वाह्य प्रभाव प्रतिक्षण मनुष्य पर प्रभावित होते रहते हैं। उनके अन्तर्गत वह शिक्षा का प्रेमी बन कर अनावश्यक विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान देता रहता है। चूँकि उसे रहस्य।

का पता नहीं है। इसलिये समय आने पर वह विचार मानसिक दुर्बलता के साथ २ उसके लिये आपत्ति का कारण बन जाते हैं। अशांति के उत्पन्न होने में सबसे अधिक भाग धार्मिक पुरुषों और और उनके धार्मिक ग्रन्थों का है, जो मन्तव्य को न समझ कर आपत्ति उठाते हैं। स्मरण रहे । धार्मिक शिक्षा के रहस्य को पूर्ण रूप में केवल वह समझ सकता है जो स्वयम् पूर्ण है। और जीवन की प्रत्येक समस्या का निज अनुभव रखता है। ऐसे पुरुष के सतसंग से मनुष्य का अज्ञान और भ्रम दूर हो सकता है और बौद्धिक शांति मिल सकती है। अशांति का चौथा कारण जीवन का बिना इच्छा के संचालन में आना है। उदाहरण के रूप में समझो एक व्यक्ति सुख की नींद सो रहा है और वह उसी दशा में सुख और आनन्द मानता है । दूसरा व्यक्ति उसको बल पूर्वक जगा देता है। तो वह सुरत की बेचैनी के कारण अपने शरीर और मन में एक प्रकार की अशांति महसूस करता है। वास्तव में जब तक मनुष्य शरीर और मन की क़ैद में है अशांति का दौर आता ही रहता है। पूर्ण शांति इस दशा में असम्भव है। यही कारण है कि पूर्ण पुरुष ने इस संसार के उत्पन्न होनेवाले अथवा मन और शरीर की रचता करने वाले को काल का नाम दिया है। शरीर और मन के बन्धन में रहने वाला प्राणी वाह्य प्रभावों के अन्तर्गत अशांत होने के लिये विवश होता रहता है।

काल चक्र एक सहज हिंडोला, झूला अचरज न्यारा।
सब कोई झूले झूला चढ़कर, काल झुलावन हारा॥
एक दशा में कोई न वरते, ऋषि मुनि ज्ञानी ध्यानी।
पीर पैग़म्बर, कुतुब औलिया, सब कोई जाल फँसानी॥

इसलिये मित्रो (पूर्ण शान्ति तो काल की रचना के परे है।

जहां नहीं कर्ता न कर्तारा, न कोई सृष्टि पसारा।
वहाँ नहीं है कोई कुछ जो कुछ शान्ति का भंडारा॥

प्रियवर ! १००) देकर शान्ति चाहते हो। अहा ! संसार सन्तों और फ़क़ीरों को भी घूँस खाने की टेब सिखाई। परिणाम यह निकला कि विभिन्न धर्म, पंथ और सम्प्रदाय चल पड़े। और संसार दुखों का घर बन गया।

'जे दौलत देतां शान्ति मिलदीं ताँ ले जांदे लाख हजाँरा।'

यह ठीक है कि सांसारिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये धन की भी आवश्यकता है। एक बिधवा स्त्री का पुत्र जो निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहा है और विवाह के व्यय को पूरा करने के लिए पैसा पास नहीं रखता था दीर्घकाल से मेरे पीछे पड़ा हुआ था। चूँकि उसे देने के लिए मेरे पास कुछ न था, मौज ने प्रबन्ध कर दिया। उस व्यक्ति का भेजा हुआ १००) उसको दे दिया है। उसका विवाह इसी बैशाख मास में है। चूँकि रुपया भेजने वाले ने व्यवहारिक दृष्टिकोण से मेरी लाज रखली इसीलिए उसको धन्यवाद देता हूँ।

संसार में लेने और देने का नियम साथ साथ कार्य करता है जो लेता है और देता नहीं अधूरा व्यक्ति है। चूँकि मैंने उसका १००) लिया है इसलिए अपने अनुभव के आधारा पर शान्ति प्राप्त करने की विधि बताता हूं:—(१) शांति और सुख के खोजी के लिये शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य की परम आवश्यकता है, जिस प्रकार जीवन रखने के लिए श्वांस आवश्यक है:—

पढ़ने वालो लिख रहा हूँ दर्द से मैं यह ख़याल।
जिन्होंने अपना ब्रह्मचर्य खोया, देखा उनका अवतार हाल॥
मैं भी उनमें से एक था, कहते शर्म नहीं आती अज़ीज़।
बचपन की शादी के कारण, खोगया था मैं अपनी तमीज़॥
बारह वर्ष बसरे में गुज़ारे, इस दौरने आज़ाद किया।
दाता की मुझ पर हुई दया, और मैं शान्ति को पाया॥
कल की बात है, एक व्यक्ति दूर की यात्रा करके अहमदाबाद

से आया था। प्रकट रूप में स्वस्थ और धनाढ्य प्रतीत होता था किन्तु अशान्त और दुखी था। उसने नाम दान की इच्छा प्रकट की। मैं हँसा और कहा। मित्र! अशान्ति का कारण बाल्यावस्था से गलत कार्य का जीवन है। जो बातें मैं बताता हूं उन पर चलो, शान्ति मिल जायगी। उसने मान लिया। ऐसे अनेक उदाहरण मैं अपने लेखों में दे चुका हूँ। अहाहाह!

ऐ हजूर महता साहब, संत कृपाल, ऐ हजूर हरचरन प्यारिया।
दूसरे नाम देने वालो महात्माओ, मैंने चोला दया का धारिया॥
कोई नाम तुम्हारा दिया हुआ, किसी अशांत को न शांत बनायेगा।
जब तक कि यह मन, वचन, और कर्म से मानसिक ब्रह्मचर्य न कमायेगा॥
बे फ़ायदा है जाल गुरू इज्म अगर मन की नहीं होती गढ़त।
बिन करनी के ऐ भाइयो, कैसे कोई नाम का फल पायगा॥
इसलिये, मैं दोनों हाथ जोड़, जीवों की दशा का ध्यान रख।
कहता हूँ सत उपदेश, बिन अमल न कोई शान्त हो जायगा॥
मुझको नहीं कोई ख्वाहिश, धन धाम और मान की अज़ीज़ो।
व हुक्म दाता व सांवलेशाह जो राज़ है, फ़क़ीर कह जायगा॥

दूसरी बात:—'जिन जिन पंथों चालना, सोई पंथ सँभार।'

अपने कार्य से कार्य रहे, बेकार न रहो। विद्यार्थी हो विद्या की ओर ध्यान दो। दुकानदार हो अपने कार बार को देखो। मज़दूर हो, मज़दूरी परिश्रम से मन लगाओ। यदि कुछ समय मिलता है अपने अन्तर शुभ भाव के साथ चले जाओ। अपने कार्य सम्बन्धियों से मेल रक्खो। उनके अनुभव से लाभ उठाओ। अपने कार्य में उन्नति करते हुए उसे बढ़ाते जाओ, किंतु अहतियात को कभी हाथ से न दो। और विचार रक्खो—'परा-गेदा रोज़ी परा गेदा दिल' 'पेट न पइयाँ रोटियाँ सबै गल्लां खोरियां।' जहाँ तक हो सके ऋण न लो। दूसरों का भरोसा न

"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं। करि विचार देखो मन माहीं ॥"

तीसरी बात किसी पूर्ण-पुरुष के सतसंग में बैठो जो प्रत्येक प्रकार के भ्रम से मुक्त है। अपने निज रूप का साक्षातकार कर चुका है। जीवन की समस्त मंजिलों का अनुभव रखता है। निर्भ्रान्ति, स्वतंत्र विचार और निर्पक्ष अथवा किसी ऐसे साहित्य से सम्बन्ध रक्खो जो स्वतंत्र विचार देता हो। और किसी धर्म पंथ, सम्प्रदाय अथवा समाज का पक्ष न रखता हो। किंतु अनुभव बताता है कि कतिपय दशाओं में इन नियमों पर चलने से भी प्राणी को शांति नहीं मिलती। उसका कारण मानसिक कमियाँ होती हैं। स्वभाव के नियम के अन्तर्गत विवशता होती है। उसका उपचार है मस्तिष्क को ठीक करो, वह किस प्रकार। परसों के ट्रिब्यून में एक लेख था कि विलायत में मानसिक दोषों की चिकित्सा का प्रयोग किया जा रहा है जो अभी तक केवल बन्दर पर सफल सिद्ध हुआ है। अनुभव करने वाले डाक्टर ने एक बन्दर के मतिष्क में ३ इलैक्ट्रोन्स लगा दिये जिससे बन्दर को कोई कष्ट नहीं हुआ। फिर बन्दर को अत्यन्त तंग किया गया ताकि वह भयंकर हो जाय। ज्योंही बन्दर भयंकर हुआ मस्तिष्क में उन इलैक्ट्रोन्स के केन्द्र को पूर्ण कर दिया गया अर्थात् बिजली का चक्र पूर्ण होगया और वह बन्दर देखते ही देखते शान्त हो गया। उसकी भयंकरता एक दम दूर हो गई। वह डाक्टर इसी नियम के आधार पर अब पागलों, दीवानों का अनुभव करने पर तुला हुआ है। इसमें कौन सा नियम कार्य करता है यह कि मस्तिष्क में विशेष प्रकार की शक्ति को प्रवेश करके शान्ति लाई गई। यही रहस्य नाम के जपने में भी कार्य करता है। सुमिरन, ध्यान और मनन का त्रिमुखी साधन मानवीय मस्तिष्क के भीतर विशेषत: अशान्त, भ्रममय और खोजी प्राणियों के मस्तिष्क में एक प्रकार का बल अर्थात् प्राकृतिक बिजली का दौर लाता है।

जिससे मनुष्य को सामान्य जीवन में सम्पन्नता का परिवर्तन, और प्रसन्नता, आनन्द का अनुभव होने लगता है। किंतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह साधन किसी पूर्ण पुरुष के आदेशानुसार किया जाय।

सुमिरन, ध्यान और भजन का त्रिमुखी साधन हमारे जीवन की धार अथवा शक्ति के वापिस मस्तिष्क की ओर लौटाता है। मनुष्य अपने विश्वास के अनुसार अथवा किसी शब्द या रूप के सहारे अथवा उसके द्वारा इस साधन को करे। कोई विशेष बन्धन नहीं है। किन्तु यह आवश्यक है कि जिह्वा न चले केवल धार अथवा सुरत को ही वापिस लौटाने अथवा अपने केन्द्र पर मस्तिष्क में वापिस ले जाने का साधन करे। जिस समय धार या सुरत मस्तिष्क के भीतर अपने केन्द्र या अपने आप में ठहरने लगेगी, मस्तिष्क स्वच्छ और सुथरा हो जायगा और उस दशा में शरीर और मन के भीतर शान्ति सौख्य आनंद और महान् आनंद प्रतीत होगा। यह मेरा निज अनुभव है कभी कभी मैं इस प्रकार महान् शांति की दशा का अनुभव करता हूँ कि लेखनी और जिह्वा उसका वर्णन नहीं कर सकती। सुरत अपने घाट से उतर कर मानसिक चक्करों से जाती हुई शारीरिक चक्रों में जिस मार्ग से आती है उसे उसी मार्ग से वापिस ले जाकर अपने घाट पर ठहरादेना है। इस यात्रा अथवा पूर्ण चक्र का नाम राधास्वामी है।

"कबीर धारा अगम की सतगुरु दई लखाय।
ताहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग लगाय॥"

सुरत स्वयम् धार है और उसके ठहराव के स्थान का नाम स्वामी है। मेरा निज अनुभव यह है कि इस साधन से पूर्ण शांति मिलती है; किंतु किनको? जो सच्चे खोजी और वासनाओं से रहित हैं। अब एक प्रश्न शेष रह जाता है। वह यह कि क्या तुमको

कोई महात्मा इस अवस्था में पहुंचा सकता है ? मैं उत्तर दूँगा हाँ और नहीं। वास्तविकता यह है कि जिस मनुष्य से तुम यह आशा रखते हो, यदि वह स्वयम् निर्भान्त और शांत है और तुम्हारा विश्वास पूर्ण है तो उसका संस्कार और प्रमाणु तुमको उस अवस्था में ले जांयगे अन्यथा नहीं।

यही कारण है कि संतों के मार्ग में पूर्ण गुरू की संगत पर बल दिया जाता है। किंतु स्मरण रहे, वहाँ से भी उनको लाभ हो सकता है। जो सच्चे अभिलाषी हैं और उन आवश्यक साधनों के साधक हैं जिनका उल्लेख इस लेख में किया गया है।

सुरत के उतार और चढ़ाव के दौर में जिस जिस प्रकार के बोध भान उत्पन्न होते हैं उनका अनुभव ही जीवन की यात्रा है। यदि भाग्यवश कोई रहस्यज्ञाता मिल जाय तो यह जीवन यात्रा निश्चित और निर्विरोध पूर्ण हो जाती है। इसीलिये कहा है 'सतगुरु संग बांध जुग चलो। चोट न खाओ काल बल दलो ॥'

जुग बांधता क्या है ? वाह्य पूर्ण पुरुष का सतसंग। उसका आदेश और उसके अनुसार साधन। मैंने नियमों की व्याख्या करने में कोई कमी नहीं रक्खी है।

जिस व्यक्ति ने यह रुपया भेजा है मैं उसे नहीं जानता और न उससे कोई परिचय है, न पहिले कभी देखा है। हां ! वह लिखता है कि मैं उसके अन्तर उसके विश्वास के अनुसार उसकी सहायता करता रहता हूं। और उसने यह रुपया विश्वास के व्यक्त करने के लिये भेजा है। इसलिये जब कभी वह मिलेंगे बातचीत होंगी।

—प्रेषक पं० भगवानसिंह टीचर

—०—

॥ निज अवस्था ॥

मैं तो जंगल में पड़ा हूं और तुम बस्ती में हो।
ऊँचे चढ़ आया बहुत मैं और तुम पस्ती में हो ॥

प्यार करना ज़िंदगी है ज़िंदगी औरों को हो।
तब कहूँगा सच्चे दिल से तबक़ये हस्ती में हो॥
जीना और मरना मेरा है दूसरों के वास्ते।
तुम पियो उलफ़त की मैं मेरी तरह मस्ती में हो॥

—❀०❀—

दीवानगी-समझदारों के लिये यथार्थ अन्यों के लिये आश्चर्य

(ले०—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

दीवाना समझती होगी दुनियां फिर भी दीवाना पन से काम।
मजबूर करके फिर भी मौज करा रही है मुझसे यह काम॥

प्रश्न किया जायगा मौज क्या वस्तु है जो कार्य करने के लिये विवश करती है ? प्रकृति का गुण कर्म और स्वभाव।

जो कुछ है इस जगह सब मौज से है हो रहा।
खेल कुदरत का यह सारा मौज से है हो रहा॥

धार्मिक जगत में जो संस्कार अथवा विचार मुझे बचपन से मिले वह इस प्रकार के थे—

(१) सनातन धर्म की शिक्षा के अनुसार यह कि राम या परमात्मा जिसको मिल जाता है, वह उसी का रूप हो जाता है।

(२) ऋषियों की बताई हुई विधि से गायत्री मन्त्र, प्राणायाम मन्त्र और अन्य मन्त्रों के सिद्ध कर लेने से मनुष्य में ऋद्धि सिद्धि और शक्ति आ जाती है। वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। और इच्छानुसार सफलता का उत्तराधिकारी होता है।

(३) संतमत की शिक्षा के अध्ययन से जो विचार मिला वह सबसे बढ़कर था। संत या फ़क़ीर की प्रशंसा में कहा गया है।

संत मौज फिर कोई न टारे। ईश्वर परमेश्वर सब हारे॥

इन विचारों के प्रभाव से वास्तविकता का अभिलाषी

हुआ। रहस्य के जानने का सौदा सिर में समाया। जीवन ने दीवानापन गृहण किया और समस्त आयु इसी खोज में व्यतीत की। अब जीवन का अन्तिम दौर है। मन में उमङ्ग है। नानक तेरे सर्वत का भला। मानव समाज को शांति।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह कैसे हो सकता है? प्रकृति के वास्तविक रहस्य प्रकट करने से। (२) शुभ संकल्प मस्तु का साधक होने से। चूँकि विचार अथवा संकल्प में शक्ति होती है इसलिए चाहता रहता हूं कि:—

इन्सान दुखी न रहे सुख से रहे, निर्धन न रहे, धनवान रहे।
अज्ञान मिटे जीवों का और ज्ञान मिले, नफ़रत मिटे और सबसे प्रेम रहे॥
भाई भाई का हो हितकारी, हर एक घर में शांति विश्राम रहे
राजा प्रजा में न हो अनबन कभी, सतपुरुषों का सदा सनमान रहे॥
अन्त में जांय सब निज घर को, सबको जाकर सतधाम मिले

यदि मैं फ़क़ीर और संत हूँ और ऋषियों और संतों का मार्ग सच्चा है तो ऐसा होकर रहेगा अन्यथा सबका सब पाखंड ही पाखंड सिद्ध होगा। पिछिले ऋषि, संत और फ़क़ीर पाखन्डी और मैं भी पाखंडी।

प्रार्थना

इस संसार में होश आया अहा हा! मुझे ऐ मालिक तेरा ख्याल मिला।
जिन्दगी खोई खोज तेरी में आखिर को तू आन मुझ से मिला॥
क्या है तू! जात अगम जहां मैं नहीं यही राज है दाता मुझे जो तुमसे मिला
अभी होश है बाक़ी तन मन अपने की, वही करता हूँ तेरी दया से न हो कर्म मिला
सचाई दे मुझे और चरणों की भक्ति, जब तक तुमसे न हो दायमी मेल मिला

नोट—मिलने वालो, दोस्तो अब छोड़ो पिण्ड मेरा,
मैंने अपना आपा खोया यही मुझे दयाल मिला।

गुरू नाम है ज्ञान का, ज्ञान ही भक्ती, कर्म है,
जब तक होश है मुझे काम करूँ यह ज्ञान मिला।
सुखी रहो मित्रो जिन्होंने है मुझसे प्रेम किया,
साफ. साफ. कह चला हूँ भाइयो जो ज्ञान मिला।
नेहरू से इल्तजा है कि सच्चे बनकर राह गुज़ारना
आपत का समय आयगा उसको सिर से टालना।
मेरी इच्छा का तू फल है यही थी इच्छा,
राज ऐसा हो हिंद में न पड़े मरना और मारना।
इन्सान बनो, इन्सान बनो, इन्सान बनो है आरजू,
जो न बनेंगे इन्सान उनको नहीं होगा जीवना।

अब से कुछ समय पूर्व सत कबीर भी यही पुकार कर गये थे।

"मानुष बनकर ना मुआ, मुआ तो डाँगर ढोर।
एको जीव ठौर न लगा, लगा तो हाथी घोड़ ॥'
कर दुआ मेरे लिये भगवानसिंह हो जाऊँ चुप।
चुप ही रहने में मज़ा और अन्त में होना है चुप ॥

—❀०❀—

बृत

(ले०—परम दयाल फ़क़ीर साहब)

आज अख़बार में पढ़ा कि श्री बिनोवा जी ७२ घन्टे का बृत रख रहे हैं। और इससे वह अपने मन को शुद्ध, पवित्र करके भूमि दान आदि के सम्बन्ध में नई शक्ति और विधि उत्पन्न करना चाहते हैं। और आप भारतवर्ष के शासन को कहते हैं कि अपनी मिलटरी फोर्स को कम करे। और इस अन्तिम विचार के साथ श्री राजगोपालाचार्य भी सहमत हैं।

मेरा जीवन उस मालिक और आत्मिक खोज में व्यतीत

हुआ है। मेरा निज अनुभव है पुस्तकीय नहीं। हो सकता है कि मेरा विचार ग़लत हो परन्तु नीयत साफ़ है। न नेता बनने की अभिलाषा है और न मान प्रतिष्ठा की इच्छा है। हाँ! एक इच्छा प्रबल रही है कि मनुष्य जाति सुखी रहे। किन्तु निज अनुभव किसी और ओर लारहा है और वह भी अब कम हो रहा है। हां! वह अनुभव अथवा ज्ञान जिससे मानव जीवन सौख्य और सम्पन्नता से व्यतीत हो सकता है वह अभी तक विद्यमान है। इसलिए अपना अनुभव व्यक्त करता हूं। अपितु न करता किन्तु प्रारब्ध कर्म विवश कर रहे हैं। परमपूज्य दातादयाल जी ने कार्य दिया था कर दिया और अभी जब तक जीवन है करता रहता हूं और करता रहूंगा।

क्या वृत से मन निर्मल हो सकता है और श्रेष्ठतर विचारों को प्राप्तकर सकता है? इसका उत्तर ऊट पटांग देना व्यर्थ होगा। सबसे प्रथम बात यह है कि मन क्या है जिसको कि पवित्र करना है। मन है संकल्प और विचार। उसकी उत्पत्ति अथवा विचारों की उत्पत्ति कैसे होती है?

१५ अगस्त सन् १९४७ की मेरी प्रकाशित पुस्तक 'मनुष्य बनो' में मैंने स्पष्ट रूप से कहा है कि मनुष्य क्या है? उसको पढ़ो। प्रकाश जो यथार्थ में ब्रह्म ईश्वर अथवा परमात्मा है जब वह अपने ही दूसरे रूप स्थूल प्रकृति में प्रवेश करता है तो बोध भान अथवा मन उत्पन्न होता है। जिस प्रकार की मनुष्य की शारीरिक प्रकृति है उसका मन अथवा विचार वैसे ही उठते रहते हैं। खाद्य पदार्थ के परिवर्तन से मनुष्य के विचार बदलते रहते हैं। और साथ ही यदि विचारों को बदल दिया जावे तो शारीरिक अवस्था बदल जाती है अब यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि मन अथवा विचार शारीरिक प्रकृति के अनुसार होते हैं

है। इसका उत्तर बिलकुल स्पष्ट है। विचारों की उत्पत्ति प्रकाश या ब्रह्म कहो अथवा Creater कहो के स्थूल प्रकृति में प्रवेश करने से उत्पन्न होते हैं। इसलिये यदि कोई मनुष्य स्वयम् प्रकाश अथवा ब्रह्म में लीन होकर या स्वयम् प्रकाश या ईश्वर ब्रह्म होकर अपनी इच्छा से किसी अधिकारी को विचार देता है तो विचार लेने वाले मनुष्य में परिवर्तन का होना आवश्यक है। यही गायित्री मन्त्र अथवा संतों या साधुओं का नाम दान आदि कहलाता है। और जब मनुष्य स्वयम् साधन करके प्रकाशवान् हो जाता है वह अपनी इच्छा से अपनी प्रकृति को बदल सकता है।

मैंने इन बातों की स्वयं परीक्षा की है चूँकि संसार तङ्ग करने लग गया है इसलिये मैंने इस कार्य को छोड़ दिया है। न मेरे पास समय है और न तबियत चाहती है।

इस नियम के आधार पर कहता हूँ कि केवल वृत मानसिक उन्नति अथवा शक्ति को उत्पन्न नहीं कर सकता। मन की पवित्रता अनेक प्रकार की होती है। इसके अनेक रूप हैं। पवित्र और अपवित्र विचार सम्बन्धित शब्द हैं। क्रोध बुरा है सभी जानते हैं किन्तु एक अवसर पर जहां किसी निर्दयी के अत्याचार को दूर करने के लिये मनुष्य क्रोध करके उसके अत्याचार को दूर करता है वह क्रोध मानवी दृष्टि कोण से पवित्र है। प्रत्येक वस्तु का समय होता है।

मैं किसी आक्षेप की दृष्टि से नहीं लिख रहा हूं। मैंने बसरा बग़दाद में पाँच वर्ष नमक न दूध अथवा दूध से बने हुये प्रत्येक पदार्थ जिसमें घी आदि भी आजाता है नहीं खाया। केवल एक टुकड़ा रूखी रोटी का कुछ फल के साथ खाता रहा था और अब पचीस वर्ष से किसी प्रकार का अन्न नहीं खाता हूं। मेरा भोजन लगभग एक सेर दूध और एक पाव शाक जो गृहस्थ में बनता है कभी कोई फल मिल गया तो खा लिया। कार्यालय

में कार्य करता हूँ और साइकिल भी पांच छः मील चला लेता हूं। इससे इतना लाभ हुआ कि मस्तिष्क स्वच्छ है। हर बात को पूर्ण रूप से समझता है। और अधिकतर प्रसन्न रहता हूँ यह भी एक प्रकार का व्रत ही है।

परन्तु जीवन का अनुभव उस उपाय से नहीं हुआ वह केवल आन्तरिक साधन से अपने आपको ब्रह्म स्वरूप या प्रकाशवान बनाने से हुआ।

बामी कूटे बाबरे सांप न मारा जाय।

व्रतों के रखने से स्वस्थ रह सकता है। अपितु शक्तिशाली नहीं।

मैं श्री बिनोवा भावे जी से करवद्ध सहानुभूति के अन्तर्गत प्रार्थना करूँगा कि ऐसे व्रतों की अपेक्षा अपने अन्तर प्रकाश के दर्शन करें। यही गायत्री मन्त्र और साधू संतों की शिक्षा का रहस्य है। जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति के परे जो सावित्री रूपी सूर्य है उसका दर्शन करो वह तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक हो। गुस्ताखी माफ।

इस अनुभव के आधार पर जो मुझको हुआ मैं करबद्ध श्री गोपालाचार्य और बिनोवा जी से प्रार्थना करूँगा कि मिलटरी फ़ोर्स को भारतवर्ष से कम करने की सम्मति न दें अभी समय नहीं है।

यह भी जो कुछ मैं लिख रहा हूं मेरा दावा नहीं है परन्तु अनुभव है जिसको इनटयूशन कहते हैं। खेद है शब्द मेरे भाव को यथार्थ में प्रगट नहीं कर सकते हैं। फिर भी जिस सहानुभूति के अन्तर्गत आपने मिलटरी फ़ोर्स को कम करने की सम्मति दी है उसी सहानुभूति के अन्तर्गत मैं यह सम्मति दे रहा हूं कि ऐसा न किया जावे अपितु किसी सीमा तक फ़ोर्स को बढ़ाया जाय।

इसका अर्थ यह नहीं कि मैं युद्ध कराना चाहताहूं। कदापि

नहीं। कदापि नहीं। कदापि नहीं। मैं शांति का पुजारी हूं परन्तु शांति को रखने के लिये शक्ति की आवश्यकता है।

आपका अस्तित्व संसार में माननीय है और इसी कारण आपके प्रत्येक शब्द का संसार मान करता है और सुनता है। परन्तु हमारी कौन सुनता है। आप यहां पर भूल कर रहे हैं।

भूले हुए वृद्ध महानुभावो रूस ने यदि अपनी फ़ोर्स कम की है तो किसी और दृष्टिकोण से। उसके पास उतनी फ़ोर्स है कि यदि कोई सामना करे तो उत्तर दे सकता है। बल पौरुष रखते हुए जो शान्ति चाहता है वह मनुष्य है। देश को निर्बल मत करो।

आप महानुभाव 'अहिंसा परमो धर्म' के नियम को ग़लत समझ रहे हैं। प्रकृति में अहिंसा का नाम नहीं है। वर्षा आती है सहस्रों जीव जन्तु उत्पन्न हो होकर मर जाते हैं। कड़ी धूप आती है क्या होता है।

प्रकृति में अहिंसा कहां है? बकरी घास पात खाती है। बकरी को कोई और खाता है। उसके खाने वाला कोई और है। जिस दृष्टि कोण से अहिंसा परमोधर्म का नियम है। वह मानसिक और आत्मिक शांति का विचार है न कि संसार का व्यवहार। गपल चौथ से हानि होगी।

मेरे ख्याल को सोचो। श्री नहरू को करने दो जो वह करते हैं और ऐसे व्रतों को यदि कोई रखना चाहता है तो उसको व्यक्त न करें। दुनियां वाले वही करने लग जाते हैं जो हमारे पूर्वज करते हैं। महात्मा गांधी का व्रत आदि धारण करना उस समय के लिये उचित था अब नहीं है। मानो न मानो तुम हो मुख्तार कहने से था हमें सरोकार।

शुभ संदेश शुभ संदेश

परम पुरुष पूर्ण धनी हुजूर महर्षि शिव व्रतलाल जी महाराज वर्मन एम० ए० एल एल० डी० की जीवनी तैयार किये जाने की योजना है। महर्षि जी के परम पुनीत अस्तित्व के परिचय की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रत्येक सतसंगी ही नहीं अपितु साहित्य प्रेमी भी उनके जीवन से परिचित हैं। आपने सहस्रों पुस्तकें" उपन्यास तथा असंख्य पत्र पत्रिकायें एवं वृहत् ग्रंथ लिख लिखकर साहित्य जगत का रेकार्ड तोड़ दिया है। ऐसी महान विभूति का जीवन लिखित रूप में भविष्य के साहित्य प्रेमियों एवं संत मतानुयाइयों के लाभार्थ तैयार किये जाने का निश्चय हो चुका है। इस महान् कार्य का पूर्ण होना समस्त प्रेमिमों के सक्रिय सहयोग पर ही निर्भर है। अतः प्रत्येक प्रेमी से नम्र निवेदन है कि वह अपना कर्तव्य समझते हुये जीवन के सम्बन्ध में महर्षि जी महाराज के विषय में जो कुछ भी उन्हें ज्ञात हो अथवा जिस रूप में इन्होंने महर्षि जी को देखा हो, लिख कर शीघ्रातिशीघ्र श्री मोहनलाल नैयर ऑनरेरी असिस्टेन्ट सैकेट्री द्वारा मकान न० ६८३ शिवाजी स्ट्रीट, करौल बाग़ दिल्ली न०५ को सीधी भेजने की कृपा करें। धन्यवाद सहित स्वीकृत होगी। परमदयाल पं० फ़क़ीरचंद जी महाराज की स्वीकृति से यह कार्य हाथ में लिया गया है और उनकी सहायता सम्मिलित है।

निवेदक—नन्दलाल सच्चदेव
(आनन्द दयाल)
ऑनरेरी सेक्रेटरी परमदयाल
फ़क़ीर आत्मिक पुस्तकालय व
सतसंग सभा दहली-२५/३२
राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

परम दयाल फ़क़ीर साहब ने सत्त धाम की स्थापना की !

मौज मुझे भिबंली ग्राम ज़िला गुरुदासपुर में ले गई। वहाँ मैंने २७-५-५६ को प्रातःकाल सत्तधाम की नींव रक्खी। क्यों ? मैं अपने अन्तर में आप अपनी आत्मा से प्रश्न करता हूं कि तूने ऐसा क्यों किया ? प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक कार्य के करने की गरज़ होती है। मेरी गरज़ है दुखी अशान्त बहमी भरमी और अज्ञानी जीवों को सुख शान्ति निर्भ्रान्ति और ज्ञान देने की। परन्तु महसूस करता हूँ कि ऐ फ़क़ीर क्या यह तेरी ग़लती नहीं है। मौज को जो करना है वह करेगी है। तुझे यह ख़ब्त क्यों सवार है। इसका उत्तर मेरे पास कुछ नहीं।

मौज करती है अपना काम मैं कौन और गैर कौन है।
क्या बताऊँ क्यों किया ? यह काम फ़क़ीर होता कौन है ॥

यही समझ आरही है कि मेरे बसकी कोई बात नहीं है। जो होना है होकर रहता है। हम सब घेर बाँधे हुये किसी ओर को ढकेले जा रहे हैं। जो निज स्वार्थ और अहङ्कार में आते हैं वह मानसिक दुख उठाते हैं और जो मौजाधीन होकर कार्य करते हैं वह सुखी और शांत रहते हैं। परतु इस वर्णनशैली से माया देश के मनुष्य संतुष्ट नहीं हो सकते। इसीलिए मौज यह लेख लिखवा रही है।

आज दो वर्ष का समय हुआ मैं हुजूर सांवलेशाह की कृतज्ञता से प्रभावित होकर उनके जन्म दिवस के भन्डारे पर व्यास गया था। वहां एक व्यक्ति सरदार चन्ननसिंह आये और रो पड़े। मैंने पूछा क्या है ? वह बीस या पच्चीस वर्ष के सतसङ्गी थे। उलझे हुये थे। उनकी शक्ल व सूरत को देखकर आन्तरिक इन्टूशन Intution ने कहा कि मौज ने इनको किसी

मुख्य कार्य के लिये पैदा किया है। उनको गले लगाया। उनके चरणों को सिर पर रक्खा। अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार उनको विशेष हिदायतें साधन सम्पन्न होने के लिए कहीं। वह अनेक बार होशियारपुर दर्शन देते रहे। उनकी रहनी में परिवर्तन आया और उनके प्रताप से मुझे भी बहुत कुछ प्राप्त हुआ।

सेवक के चरण गुरु के सिर पर समझे कोई राज़ अमोला।
जिसने समझा वह तर गया हमने पाया भेद अमोला॥
जब से राज़ समझ में आया अनुभव खोपड़ी में विराजा।
पाकर अनुभव हो गये अब हम राजाओं के राजा॥
जग को राजा बनाने खातिर हमने स्वांग बनाया।
नर चोले में प्रगटे आकर नाम फ़क़ीर धराया॥
यह भी बन्धन फ़रज़ी बनाया जीवों की आंखें खोलूँ।
जो कोई रम्ज़ हमारी समझे सत्त धाम ले चालूँ॥

इसलिये सरदार चन्नणसिंह को 'चन्नेशाह' का नाम देकर वहाँ अमली सतसंग कराने के विचार से और उस स्थान को जहां उन्होंने बीस या पच्चीस वर्ष तप किया है सत्त धाम का नाम देकर उनके चरणों में प्रार्थना कर आया हूँ कि इतवार या प्रति मास को जो कोई दुखी अशान्त भ्रान्तमय प्राणी आये उसको देखकर यह इच्छा किया करो।

"नानक तेरे भाने सर्वत का भला।"

कोई प्रश्न करेगा अमली सतसङ्ग क्या होता है। सुनो मित्रो!

(१) प्राचीन काल में जहां सच्चे ऋषि और सच्चे साधू रहते थे वहां के पशु भी अपने द्वेश भाव को त्याग कर फिरा करते थे। पुराने इतिहास बताते हैं। मैंने एक साधू को जो बाड़ी अम्बोटा ग्राम, जो होशियारपुर के समीप है, में रहता था। उसके आस पास सांप व अन्य पशु रहते थे। वह सांप बाहर से आने वालों को काटते नहीं थे। उन सांपों या पशुओं को कोई

भाषण या व्याख्यान नहीं दिया गया था केवल साधू के प्रेम भाव की किरणों का प्रभाव था।

(२) उदाहरण अपवित्र है। परन्तु विवशता है। पशु या पक्षी के पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग का जोड़ा जब कहीं आपस में भोग करता है तो वह मनुष्य जिसमें काम का अङ्ग होता है प्रभावित हो जाता है। इसी भांति अशान्त भ्रांतमय दुखी प्राणी जिनमें शांती और सकून की चाह होती है जब किसी शान्त और पुर-सकून मनुष्य को देखते हैं, उसके दर्शन करते हैं उनकी मान-सिक अवस्था बदल जाती है इसका नाम अमली सतसंग है।

परन्तु जो बुद्धि और मानसिक दृष्टिकोण से किसी वस्तु की बुद्धि से खोज करते हैं उनके लिये मेरे जैसे दीवाने की आवश्यकता आवश्यक है जो उनको बुद्धि, और मानसिक दंगल से निकाल सके परंतु उनको भी साधन और अभ्यास की आवश्यकता होगी।

एक जन्म गुरु भक्ति कर जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद चौथे में निज धाम॥

इसलिये वहाँ मानसिक दंगल वालों के लिये सरदार कपूरसिंह अरज़ीनवीस बटाले वाले को कह आया हूँ कि वह अक्ली सतसंग में भाग लिया करें और अकली सतसङ्ग का काम हुजूर 'चन्नेशाह' को दे आया हूँ। भाषण देने वाले आवश्यक नहीं आमिल हों यदि सौभाग्य से वह आमिल भी हों तो फिर क्या कहना है।

बात बनाई जग ठग्यो मन परबोध्यो नाहिं।
कहें कबीर मन ले गया लख चौरासी माहिं॥

उनको नाम देने की आज्ञा दे आया हूँ। नाम देना क्या है।

दुनियां भरम भुलानी रे समझे नहीं बानी रे।
संसार बना है मूरख अज्ञानी रे॥
हमने दिल में दया अब ठानी रे।

क्यों ? हम भी थे मूर्ख अज्ञानी रे ॥
जिन्दगी भूल भरम में बितानी रे ।
गुरू की दया साध की संगत हो गये निर्वाणी रे ॥
निष्काम परोपकार पने की ठानी रे ।
ताते हमने खेल खिलानी रे ॥
कोई कोई गुरुमुख समझे सार रूहानी रे ।
राधास्वामी कह गये अचरज बानी रे ॥

वह नामदान है हित देना और जीव के लिये हित चाहना। हित के साथ मत देना वहाँ सतसङ्ग हुआ मौज से "जग में घोर अन्धेरा भारी तन में तप का भण्डार" का शब्द निकला। उसकी व्याख्या की गई। वह व्याख्या यहां नहीं करता। सुखमणि साहब की चार अष्ट-पदियों पर मैंने अपने निज अनुभव के आधार पर प्रकाश डाला। मेरे विचार में यह एक वास्तविकता का सच्चा चित्र है। परन्तु उसके देखने के लिये किसी जीवित पूर्ण पुरुष की आवश्यकता है जो स्वयं इन पदों से गुज़रा हुआ हो।

चूँकि मैंने सरदार चन्ननसिंह के प्रताप से उस भेद या उस रहस्य को जताने के लिये संत कबीर, गुरु नानक, राधास्वामी दयाल व अन्य महान आत्मायें आती रहती हैं और जिस रहस्य को मैंने प्राप्त किया उसकी उनके जीवन से पुष्टि हो गई इसलिये मैंने उनको अपने लिये प्रकाश माना और अपने विचार से उनको 'चन्नेशाह' कह कर पुकारा।

साथ ही चूँकि वह निष्कपट, निस्वार्थ बच्चों जैसा स्वभाव जो कि अन्तिम लक्ष्य है जिसके मन में किसी धर्म, पंथ सोसाइटी या किसी से द्वेष बैर नहीं है। इसलिए जहां वह रहते हैं उस स्थान का नाम सत्त धाम रक्खा है। रक्खा है न समझो मैंने माना है। मैं कौन हूं रखने वाला मेरा विचार है जहाँ कोई शान्त सच्चा निष्कपट, निस्वार्थ, निरबैर, निर्भय और अडोल पुरुष

रहता है वही सत्तधाम है। मनुष्य के अपने अन्तर की जो मनुष्य जीवन की पश्नी ऐसी अवस्था है उसको आन्तरिक सत्तधाम कहते हैं। परन्तु हुजूर चन्नेशाह को कह आया हूँ।

चलो चलो सब कोई कहे बिरला पहुँचे कोय।
एक कनक और कामिनी दुर्गम घाटी दोय॥
कन्चन तजना सहज है सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्षा तजनी दुर्बल ऐह॥

संसार के प्राणियों का सत्सङ्ग या प्रेम बड़े २ महान महात्माओं को भी गिरा देता है।

सन्त तब लग भय करें जब तक पिन्जर साथ।

स्त्रियों के जाल से बचना। रुपये पैसे से कोई निजी सम्बन्ध न रहे। इस गांव के रहने वाले बहुत सज्जन पुरुष हैं। वहां का भेंट चढ़ावा सबसे पहले इस गांव के दुखी निर्धन मनुष्यों के काम आये। स्थिती और परिस्थिती के अनुसार जैसी मति सत संगियों की हो वैसा किया जाये। हिन्दू, सिख, पंथ, धर्म जाति पाँति का कदापि ध्यान न हो। मैं आशा करता हूँ कि इस गाँव के रहने वाले व अन्य सज्जन पुरुष सच्चे मनुष्यता के नियमों पर चलते हुए निज सहानुभूति और सहायता के नियम को अपनायेंगे।

"गुरु और सतसङ्गी दोनों मीत"

मैं वहां की सङ्गत और हुजूर चन्नेशाह को क़सम दे आया हूँ कि सङ्गत की ओर से या किसी सतसंगी की ओर से मुझे या मेरी सन्तान या सम्बन्धियों को कोई वस्तु किसी रूप में न दी जाये। यह सतसंगियों का पैसा चूँकि अज्ञान के वश दिया जाता है जो महात्मा उसको खाता है या अपनी ग़लत मान प्रतिष्ठा कराता है वह सब से बड़े अपराध का भागी होता है।

'मैं जानता हूँ न कोई देता है न कोई लेता है 'पाप पुन्य' दोनों कहावत हैं।" परन्तु कब, जब मनुष्य को ज्ञान होजाता है कि भेद क्या है। इससे पहले इस नियम के आधीन ४२० करना महान पाप है। जीव भोले भाले अज्ञान काल व कर्म के मारे हुए हैं ! इनके अज्ञान से रोचक और भयानक बातें बनाकर इनको ठगना और अपना गलत मान, धन या धाम बनाना एक महान अपराध है। इसीलिये वहाँ सत्तधाम की संगत के भाइयों को हाथ बाँध कर विनती है कि सच्चाई का व्यवहार करना और एक दूसरे की सहायता के नियम को 'चन्नेशाह' की मति के आधीन चलते रहना।

प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन एक पैसा या दो पैसे या मुट्ठी आटा प्रतिदिन निकाले। उससे बहुत कुछ हो सकता है। मैं चाहता हूं कि यहां मनुष्यता का केन्द्र बनाया जाये और दूसरों को शिक्षा प्राप्त हो अब बड़ा भारी प्रश्न यह है कि कौन गुरु तुम्हारी मोक्ष कर सकता है। स्वामी जी ने लिखा है।

यह करनी मैं आप कराऊँ पहुँचाऊँ धुर दरबारा।
तुम अचिन्त रह धरो पियारा ॥

जब तक कोई मनुष्य अचिन्त नहीं होता पूर्ण रूप से बे आस नहीं होता अथवा बे आस पने में नहीं आता कोई भी धुर दरबार में नहीं जा सकता है धुर दरबार मनुष्य जीवन की वह अवस्था है, आदि है, जहां किसी प्रकार की चिंता फिक्र भ्रम अज्ञान बहम नहीं रहता। यह जब होगा जब तुम किसी अचिंत पुरुष के सतसंग और प्रेम से कृतार्थ होवोगे। जहां अचिन्त हुए तुमको अपने निज रूप का अनुभव हो जायेगा। पहले वाह्य संसार के चक्र से अचिंत बनो फिर मानसिक चक्र से अचिंत बनो।

साफ कहता हूँ तो भंग होते हैं दायरे।
साफ़ ब्यानी से महात्मा तंग होते हैं।

जीव विचारे भूल भर्म में रहकर दंग होते है।
अज्ञान को मिटाने के लिए सतपुरुष निदंग होते हैं॥

सतसंग के दिन मौज ने मुझे महात्मा पूर्णसिंह जी के पवित्र दर्शन कराये, अपना भाग्य सराहा परन्तु खेद रहा आपने अपना मुख कपड़े से ढके रक्खा। वह निष्कलंक अवतार के लिखने से कुछ अप्रसन्न मालूम होते थे। परन्तु मैं विवश हूँ और था। वह न मुझे पत्र भेजते न मैं लिखता।

इस चन्द रोज़ा ज़िन्दगी बिच क्या पाखन्ड जगाऊँ।
उमर मेरी गुज़र गई जो समझा वह कह गाऊँ॥

मैंने उनसे हाथ बाँधकर प्रार्थना की महात्मा जी किसी मनुष्य को किसी बात का दावा नहीं है मालिक के खेल कुदरत का भेद किसने समझा जितने जितने महात्मा आये सब ने अपना अपना खेल खेला। परन्तु क्षमा प्रार्थी। मैंने अपने सहस्रों में से एक आप को निज स्वार्थ से बचा हुआ पाया। मैंने जो कुछ 'निष्कलंक अवतार' में या किसी और स्थान पर कहा अपनी नीयत से साफ़ कहा और उसको बदलना कठिन है। हां यदि जीवन में और अनुभव हो जाये तो दूसरी बात है। अपराध नीयत पर होता है। उनके एक साथी ने कहा आप अपने आपको दयाल कहते हैं। मैं सोचता हूँ उसका प्रश्न ठीक है। मैं दयाल हूं। क्यों ?

बिना किसी निजस्वार्थ, मान, लोभ, लालच और अपने नाम की बड़ाई के मैं अपने जीवन का अनुभव बताता हूं इसलिए दयाल हूं।

प्रेषक:—

सन्तोषकुमार शर्मा सुपुत्र पं० मामचन्द शर्मा

विनती

तेरी दया हो मुझ पर मेरे कृपाल दाता ।
रखकर शरन में अपने कर दे निहाल दाता ॥
तेरी दया की दृष्टि से पार जाऊँगा मैं ।
भव सिंध में पड़ा हूँ उससे निकाल दाता ॥
लम्पट हूं मोह मद में बुद्धि नहीं ठिकाने ।
फैलाके हाथ अपना मुझको संभाल दाता ॥
वे पीर काल निस दिन यों ही सता रहा है ।
उससे बचा ले मुझको तू बाल बाल दाता ॥
गुरु पूरे राधास्वामी तेरा ही आसरा है ।
चहुं ओर में तना है माया का जाल दाता ॥